२२८
नागर

मेरी प्रिय कहानियां

अमृतलाल नागर

6234

अमृतलाल नागर हिन्दी के
उन गिने-चुने मूर्धन्य लेखकों में हैं
जिन्होंने यद्यपि कम लिखा है
परन्तु जो भी लिखा है
वह साहित्य की निधि बन गया है
सभी प्रचलित वादों से निर्लिप्त
उनका कृतित्व और व्यक्तित्व
कुछ अपनी ही प्रभा से ज्योतित है
उन्होंने जीवन में गहरे पैठकर
कुछ मोती निकाले है
और उन्हें अपनी रचनाओं में
बिखेर दिया है
उपन्यासों की तरह
उन्होंने कहानियां भी कम ही लिखी हैं
परन्तु सभी कहानियां
उनकी अपनी विशिष्ट जीवन-दृष्टि
और सहज मानवीयता से
ओत-प्रोत होने के कारण
साहित्य की मूल्यवान सम्पत्ति है

मेरी प्रिय कहानियां

अमृतलाल नागर

6228

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

देखने चल दी। दूसरे दिन जब नवाब मियां नवाबगंजी पटाखे लिए चौक से लौट रहे थे—शबे-रात का ज़माना था—खटिक मियां ने स्पिरिट से गीले रूमाल में झप से दियासलाई दिखा इनके हाथ पर उछाल दिया।

"बस जनाब, आप यह मुलहजा फरमाएं कि तोप-सा धड़ाका हुआ और पंजा का पंजा सर्र से गायब! बाकी रही सिर्फ खून और चर्बी का फौवारा छोड़ती हुई उनकी कलाई और उसमें से लटकता हुआ अधजली नसों का लोथड़ा। तब से भौजी ही अपनी मुंह जली सौत और नवाब मियां की दारू की बोतल और चाट का इन्तज़ाम तरकारी बेच-बेचकर करती हैं। हम तो कहते हैं बड़ी गमखोर हैं हमारी भौजी, नहीं तो इन्हें क्या कमी थी? बड़े-बड़े नवाब लोग इनपर कुर्बान होते रहे। हजारों बार हम ही से लोगों ने कहा, 'कादर हुसैन, सौ रुपये तुम भी ले लेना। नवाबिन को हमारे हरम में पहुंचा दो।' मगर नवाबिन बन्दी ऐसी कि सदमे उठा लेना मंजूर, तकलीफें सह लेना गवारा, मगर अपनी जगह छोड़ के न गईं। लाखों रुपये के ज़ेवर इनके सामने रख दिए थे हमारे नवाब ने, मगर बन्दी ने मुंह फेरकर देखा भी नहीं।...और ये साला कमीना ऐसी परीज़ादी-सी सआदत मन्द औरत को मार रहा है।" बिजली के खम्भे का सहारा लेकर खड़े हुए कादिर मियां एक राह चलते को नवाबिन के चीखने-चिल्लाने का सबब बता रहे थे।

"अमां, तो बात क्या हुई?" उसने पूछा।

"बात कुछ भी नहीं, मज़े में पड़े हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे मियां। उधर से एक कचालूवाला निकला तो उससे एक पैसे की चाट लेकर खाई। जब कचालूवाले ने पैसे मांगे तो भौजी ने उठकर इनके कुरते की जेब से निकालकर दे दिए। बस जनाब, अब आप ये खयाल फरमाएं कि नवाब भाई जोश में आकर उठे और दे दनादन, दे दनादन भौजी को मारना शुरू कर दिया। अब आप ही बताइए मियां, कि इसमें भौजी की क्या खता थी? कौन इनकी कमाई में से उसने पैसा दे दिया, और फिर अपने ऊपर तो सरफा किया नहीं। ज़रा सोचने की बात है भाईजान, कि चहे इसकी

बिक्री हो चहे न हो, एक रुपया रोज यह नवाब का बच्चा साला इसका सिर चीरकर ले जाता है। अभी कोई बचाने जाए तो मजा देखिए। हम ही गए तो उलटे हमारे ऊपर ही झपट पड़े। लेकिन क्या, यह कहो कि भौजी की वजह से ही गम खाकर चले आए, नहीं पीस दिया होता साले को चटनी की तरह से।"

कादिर मियां इधर बातें कर ही रहे थे, उधर जो देखा तो नवाब भाई दाढ़ी पर उंगलियों से कंघी करते हुए कन्धे पर कुरता रक्खे चले जा रहे हैं।

हिकारत की निगाह से अपने नवाब भाई की तरफ देखते हुए मियां कादिर ने धीरे से कहा, "बेईमान, काफिर साला!" और फिर हाथ झाड़ते हुए, भौजी की कोठरी की तरफ चले।

भौजी जमीन पर पड़ी सिसक रही थीं। दुपट्टा दूर पड़ा हुआ, सिर के बाल खुल गए थे, छाती ज़ोरों से धड़क रही थी।

निहायत सजीदगी के साथ, उतरे हुए कंठस्वर से कादिर मियां ने कोठरी के दरवाज़े पर खड़े होकर आवाज़ दी, "भौजी!"

भौजी और ज़ोर से सिसकने लगीं।

धीरे-धीरे उनके पास बैठकर उनका हाथ थपथपाते हुए धीरे से पूछा, "क्या बहुत मारा साले ने? बड़ा कमीना है साला।"

भौजी कुछ बोलीं नहीं। हां, सिसकियों ने और ज़ोर पकड़ लिया।

हाथ पकड़कर ज़ोर से उठाते हुए मियां कादिर ने कहा, "अच्छा, अब उठो तो। क्या बताएं भौजी, तुमने तो हमारे हाथ बांध रक्खे हैं। हम कहते हैं, जो तुम ज़रा-सा इसारा भी दे दो तो साले की हड्डी-पसली एक कर दूं। बड़ा सांड-मुस्त बना है बेईमान, औरतों पर हाथ उठाता है।"

भौजी कुछ बोलीं नहीं। हथेली के सहारे अपनी ठोढ़ी टिकाए चुपचाप आंसू बहाती रहीं।

बी गफूरन भी आकर कमर पर हाथ रक्खे खड़ी हो गई, बोलीं, "ऐसा भी क्या मुआ मुर्दुआ निठल्ला, जब देखो तब हाथ छोड़ बैठे। दाढ़ी

नोच ले ऐसे मुए की तो !"

तैश में आकर कादिर ने कहा, "अमां, हम तुमसे कस्मियां कहते हैं भौजी, कि अगर ज़री-सा इसारा भी दे दो तो साले को खोदकर गाड़ दूं।"

"ऐ भइया, ये उसका मुये का कसूर नहीं। वह मरी-पीटी चुड़ैल जैसा नाच नचाती है वैसा ही वह वन्दर नाचता है। जोरू की कमाई पर सुबू-शाम खाया, तोंद पर हाथ फेरा और दारू लेकर उस चुड़ैल के साथ मज़े में पड़े रहे।"

"अरे, तुम क्या कहती हो, गफ़ूरन ? कहो तो साली की नाक काट के आज ही फेंक दूं। जादा से जादा और क्या होगा वस छः महीने की सज़ा ही तो हो जाएगी ! सो वह भौजी की ख़ातिर कोई वात नहीं। अरे हम तो···"

वैसे ही नवाव ने कोठरी में कदम रक्खा और वोला, "हरामज़ादी ऐसे रो रही है, अपने हिसाव जैसे इसे मार ही डाला हो। चल उठ, चुप-चाप वैठ, नहीं तो तीन लातें रसीद करूंगा, कमर सीधी हो जाएगी।"

भौजी जोश में रोती हुई उठ खड़ी हुई, "ले मार ही डाल ! तुझे भी अपनी चहेती की कसम है, जो आज मुझे मार ही न डाले।"

दांत किटकिटाते हुए नवाव मियां आगे वढ़े, "हैं ! चहेती की कसम देगी ? चुड़ैल कहीं की। मेरी चहेती तेरी कौन हुई—वोल, वोल ?" ज़ोरों से दांत किटकिटाते हुए भौजी का एक गाल अपने वायें हाथ की चुटकी से दवाते, फिर तड़ातड़ तमाचे मारते हुए कहा, "वोल मेरी चहेती की कसम देनेवाली तू कौन है ? हरामज़ादी ! आज तेरा खून पी डालूंगा।"

समूची शक्ति के साथ मियां कादिर और वी गफ़ूरन ने नवाव मियां को पकड़कर अलग हटाते हुए कहा, "ये क्या कर रहे हो तुम ? गलीवालों को भी अपना तमासा दिखाना—है ! एक तो सरम आनी चाहिए, ज़ोरू के पैसे पर मज़ा काटते हो और दूसरे उसे ही मारते हो !"

कसाई के हाथ से छूटकर भौजी ने मुंह पर विखर आए वालों को समेटा ओर गड़ुए की नली लगाकर पानी गट-गट पीने लगीं।

अपने को इन दोनो के हाथो से छुड़ाने की पूरी कोशिश करते हुए नवाव मिया वोले, "छोड दो, छोड दो मुझे। तुम लाग इस वीच मे बोलने-वाले कौन ?" वालो को फिर ऊपर की ओर हटाते हुए रोकर भौजी वोली, "छोड़ दो कादिर इसे। मार लेने दो मरी-पीटी को। निकाल लेने दो उसके जी के अरमान।" कहकर भौजी जोश मे आ पिटने के लिए खडी हो गई।

मिया नवाव एक वार पूरी कोशिश के साथ अपने को कादिर और गफूरन की वाहो से छुड़ाते हुए नवाविन से फिर गुथ गए, "ज़वान चलाती है हरामज़ादी ! याद रखना, मेरा नाम है नवाव, टागें चीरकर रख दूगा—हा !"

जव तक कि गफूरन और कादिर मिलकर उसे वचाए-वचाएं तव तक तडातड आठ-दस घूसे और तीन-चार लातें नवाविन के पड़ ही गईं। भौजी वदहोश-सी होकर गिर गईं—मगर इस बार न आखों में एक आंसू, न एक सिसकी—फकत हफनी काफी तेज चल रही थी। इतनी तेज कि देखनेवाले को यही शुवहा होता था कि वस अव दो ही तीन मिनट मे वह अपना दम तोड देंगी। किसी तरह हाथ से गड़ुआ खिसकाकर गट-गट पानी के दो घूट फिर पिए, मगर इस वार उठकर मार खाने की ताव उनमे न थी। पानी पीकर ज़ोर-ज़ोर से हाफते हुए अल्लाह और रसूल और खुदा को दो-तीन वार याद कर फटी हुई आखो से छत की कड़ियों को देखती हुई फिर ढेर हो गईं।

कादिर और गफूरन चुपचाप खड़े थे। फिर गफूरन ने कादिर का हाथ खीचा और वे वाहर चले आए।

नवाव मिया ने टीन के वकस से नई लुगी निकाली, गंजी वदली, कुरता कधे पर डाला, तुर्की टोपी सिर पर रखी और कहा "अच्छा, अव अपने नखरे खतम कर।···एक आठ आने पैसे तो दे जल्दी से। देना तो, वेगम साहव।"

उसके पास बैठकर अपने वायें हाथ से उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "आज मेरे हाथ मे न जाने कौन-सा सैतान समा गया। और तुम भी तो

बस पागलपना कर बैठती हो। हज़ार बार समझा दिया, यह हाथ साला जब से कट गया है, तुम तो जानती हो कैसी तकलीफ हमें होती है। अब लहचार हूं। नहीं तुम्हें भला इतनी मसक्कत करनी पड़ती ? अच्छा होगा। हां, उठिए तो मेरी बेगम साहबा। मेरी महरानी जी।"

महरानी जी ज़ोर-ज़ोर से सिसकने लगीं। कोई दस मिनट तक नवाब मियां अपनी बेगम साहबा की खुशामद करते रहे, लेकिन जब वह न उठीं, न पैसे ही दिए और न कुछ जवाब ही दिया तब तैश में आकर खड़े हो गए। कहा, "घंटा-भर से रानी जी, महरानी जी कर रहा हूं। बड़ी आई वहां से महरानी जी बनकर। अच्छा, अब उठती है कि लगाऊं तीन लातें —हवास ठिकाने आ जाएं।" कहकर उन्होंने उसका हाथ पकड़कर उठाना चाहा, लेकिन नवाबिन छिपकली की तरह ज़मीन पर जैसे पंजे गड़ाकर चिपक गई—न उठी। "कहता हूं, उठकर सीधी तरह पैसे दे दे, नहीं तो···अभी क्या मारा है, वह डंडे बरसाऊंगा कि बस !"

नवाबिन पर इसका भी कुछ असर न हुआ। नवाब ने उसका एक हाथ पकड़कर पसली में ठोकर लगाते हुए कहा, "उठती है कि नहीं, हरामज़ादी !"

नवाबिन जान छोड़कर चीख उठी, "अरे, मेरे अल्ला, मार डाला रे!"

ठोकर की चोट ने नवाबिन को बुरी तरह तिलमिला दिया था।

गफूरन झट से उसकी कोठरी में घुस आई और चीखकर बोली, "ये क्या कर रहा है कसाई ! अरे अब तो उसकी जान छोड़ दे काफर।"

उसकी बात का जवाब न देकर नवाब ने नवाबिन से फिर कहा, "अच्छा देती है कि नहीं। या लगाऊं···"

गफूरन तड़प उठी, "ले, पैसा लेगा न ? कसाई कहीं का ! छोड़ उसकी जान, ले यह।" कहकर गफूरन ने अपनी कमर से बटुआ निकालकर उसके सामने रुपया फेंक दिया।

नवाब ने चुपचाप रुपया उठाया, एक बार नवाबिन की तरफ देखा, फिर चला गया।

गफूरन उसके पास बैठकर पंखा झलने लगी। इस बार नवाबिन सच-मुच बेहोश हो गई थीं।

रात के कोई आठ-नौ बजे कादिर मियां घूमकर गाते हुए लौटे, "मुझे लैला तेरी अदाओं ने मारा।"

भौजी ने अपनी कोठरी से आवाज़ लगाई, "अमां कादर!"

"हां, क्या है भौजी?" कादिर मियां घर की चौखट से लौट आए।

चमेली का हार गले में पड़ा था, जुही का गजरा हाथ में लपेटे हुए, नया पम्प जूता पैरों में और सिर पर बढ़िया दुपलिया टोपी। मियां कादिर पान चबाते हुए आए। भौजी बैठी पान लगा रही थीं। बोलीं, "ऐ-है, आज तो तुम बड़े खबसूरत जंच रहे हो, कादर! आज हमारे यहां ही रह जाओ।"

सिगरेट के टुन्ने का एक कश ज़ोर से खींचकर मियां कादिर ने सिगरेट को जूते में मलते और धुआं छोड़कर मुस्कराते हुए कहा, "अभी आया। ज़री लिवण्डर की शीशी ले आऊं बाज़ार से।"

कमर पर हाथ रखकर नाक सिकोड़, फिर फीकी हंसी हंसते हुए भौजी ने कहा, "लिवण्डर-फिवण्डर नहीं, ज़री-सा हल्दी-चूना पकवा लाना बहू से। अल्ला कसम, बड़ी मार मारी है मरी-पीटे ने आज।"

एक दर्द-भरी हल्की-सी अंगड़ाई लेकर भौजी फिर मुस्करा दीं।

(१६३८ ई०)

गोरख-धंधा

फटी हुई अलवायन ओढ़कर एक एल्मुनियम के पिचके-दुचके गिलास में चाय पीते हुए सतीश को सहसा अपनी ग़रीबी पर तरस आने लगा। उसके पिता यद्यपि रईस नहीं थे, फिर भी पचास रुपया महीना तो पाते ही थे। उनके ज़माने में टूट जाने पर चाय का प्याला तो दुबारा खरीदा ही जा सकता था।

आज दो बरस से सतीश को पैसे-पैसे की तंगी है। वह बेकार है, यह कहना उसके प्रति अन्याय करना होगा। सवेरे से शाम तक काम करते-करते थक जाता है—कभी किसी दफ्तर के लिए बैठा अर्ज़ी लिख रहा है, तो कभी किसी 'बड़े बाबू' के तलवे चाट रहा है। बीबी के कई गहने गिरवीं रखकर उसने कई बार सरकारी महकमों के 'कम्पिटीटिव' इम्तहानों की फ़ीस दाखिल की, मगर वे रुपये सरकार के खाज़ाने में उसी तरह जमा हो गए जैसे कि उसकी पत्नी के गहने महाजन के सेफ़ बॉक्स में।

दो दिन पहले की बात है, उसके दोनों बच्चे चीनी के प्याले में चाय पीने के लिए मचल उठे थे। मार-पीट, छीना-झपटी रोना-चिल्लाना हुआ—गर्ज़ कि तश्तरी और प्याला दोनों ही शहीद हो गए।

उस दिन चाय पीते समय वह सोचने लगा कि उसका सहपाठी मनोहर जो अब सैनिटरी इन्स्पेक्टरहो गया है, इस वक्त अगर संयोग से दौरा करता

हुआ इस मुहल्ले में निकल आए तो इस एलुमुनियम के भद्दे गिलास मे चाय पीते देख वह क्या सोचेगा ? ख्याल आते ही उसे अपने बड़े लड़के पर गुस्सा आ गया। तेज़ी से आवाज दी, "प्रेमू !"

प्रेमू जैसे ही बैठक में आया, गली में जलेबीवाले ने आवाज़ लगाई। पांच बरस का प्रेमू जलेबी खाने के लिए मचल उठा। सतीश ने पहले तो उसे डाटने की कोशिश की, जब वह न माना तो समझाना शुरू किया। उस जलेबीवाले की जलेबियों मे खराबियाँ बताने लगा, चाय के दो-एक घूट भी उसे पिला दिए।

जलेबीवाला गली मे सामने ही खड़ा हुआ प्रेमू को प्रलोभन दे रहा था। सतीश सोचने लगा कि अभी एक ही विद्रोह पूरी तरह नही दबा और यदि इसी बीच मे कहीं रामू भी आ गया तो गदर मच जाने मे कोई शका न रहेगी।

उसे जलेबीवाले पर क्रोध आ गया। फटी अलवायन उतारकर दरवाज़े के पास जा जलेबीवाले को डाटा, "जलेबी बेचने के लिए क्या तुम्हें यही एक मुहल्ला मिला है जो, जो दस घण्टे से खड़े टें-टें कर रहे हो ?"

"आप तो बाबू नाहक के लिए गुस्सा हो रहे हैं। मैं अपना सौदा बेच रहा हूं, इसमे आपका क्या नुकसान है ?"

सतीश झुंझला उठा। नुकसान तो उसका सरासर हो ही रहा था। लड़का मचल रहा था और उसके पास पैसे थे नही, लेकिन ये सब बातें तो उस टके के जलेबीवाले से कही नही जा सकती। जब उसे कोई जवाब न सूझ पड़ा तो महज़ अकड़ कायम रखने के लिए डपटकर बोला, "नुकसान ? नुकसान यही कि तुम फौरन यहां से चले जाओ।"

जलेबीवाला भी गर्मा उठा। बोला, "वाह ! अच्छे धौंस जमाने वाले आए साहब ! आपके लड़के के मारे कोई क्या अपना सौदा भी न बेचे ? आपके पास पैसे हों तो खरीदें, नहीं तो अपना दरवाज़ा बंद करके बैठ जाएं ! मैं भला यहां से···"

थापे से बाहर हो गया। कुरते की बाहें चढ़ाकर मुट्ठी बाधते

हुए ज़रा आगे बढ़, लाल-लाल आंखें निकालकर कहा, "यह तुम कैसे कहते हो बदमाश, कि मेरे पास पैसे नहीं ? तू मेरी तौहीन करता है नालायक ! निकल जा अभी मेरे मुहल्ले से नहीं तो, नहीं तो…"

नहीं तो वह क्या करेगा, या कर सकता है, यह उसे खुद भी नहीं मालूम। बरहाल, वह खट से खांसने लगा।

महाभारत के इस द्रोणपर्व को सवेरे ही सवेरे सुनकर दो-तीन पास-पड़ोसी भी बाहर निकल आए। कारण पूछा। सतीश कहने लगा, "साला सड़ी हुई जलेबियां बेच रहा है, चर्बी मिले हुए घी की; और ऊपर से मेरी तौहीन करता है, बेईमान ! इससे पूछिए, आखिर इसने मुझे समझा क्या है ? अभी हेल्थ-आफ़ीसर से रिपोर्ट कर साले का चालान कराता हूं।"

घी में मिलावट होने की पोल अनायास ही खुलते देख जलेबीवाला बौखला गया। इधर उन आदमियों ने भी उसीको धमकाना शुरू किया। वह बड़बड़ाता हुआ चला गया।

बालों के ऊपर एक बार हाथ फेर सतीश ने सीना ज़रा फुला लिया। फिर जेब से एक बीड़ी निकाल, अन्दर जा उसे चूल्हे से सुलगाते हुए एक कश खींचकर अपनी पत्नी राधा से बोला, "मैंने कहा, सुनती हो ? मैं ज़रा लाइब्रेरी जा रहा हूं।"

वह दूसरी दालान में झाड़ू लगा रही थी। बोली, "सवेरे-सवेरे किससे उलझ पड़े थे आज ?"

सतीश ने अकड़कर कहा, "जलेबीवाला था साला। यहीं रोज़ मेरी जान को आकर खलता है, कम्बख्त। आज फटकार दिया बच्चू को।"

राधा बोली, "अरे वाह, तुम्हारे मुहल्ले में क्या कोई अपना सौदा भी न बेचेगा ? ऐसी भी क्या कहीं की लाटसाहबी मिल गई है जो उसे मुहल्ले से निकाल दोगे ? बेचता है, बेचने दो। तुम्हारा क्या ?"

सतीश झुंझला उठा, बोला, "तुमने तो मुंह बनाकर कह दिया, बेचने दो। तुम्हारा क्या ? तुम तो बस लड़कों को पैदा करके छुट्टी पा गई और यहां जब वे सबेरे-सबेरे उसे देखकर मेरी खोपड़ी पर सवार होते हैं तब

मालूम होता है।"

"देखो जी, हजार बार मना कर चुकी हूं, फिजूल के लिए मुझे सताया न करो। जब देखो तब मेरे पास घुस-घुसकर आते हो, लड़ाई-झगड़ा करते हो और ऊपर से बातें बनाते हो?"

राधा शादी से लेकर आज तक के संस्मरणों का पुलिंदा खोलकर बैठ गईं।

सतीश चुपचाप अपनी अलवायन सभालता हुआ बैठक में चला आया। कोट पहना, चप्पल पहनी, बैठक की कुण्डी चढ़ाई और लाइब्रेरी चल दिया।

आखिरकार 'स्टेट्समैन' में एक मार्के की खबर पढ़ने को मिली।

एक चाय कम्पनी को एजेंटों की जरूरत थी। वेतन और कमीशन दोनों ही तरह से कम्पनी रखने को राजी थी।

सतीश ने संतोष की एक सांस ली। कम्पनी का पता नोट किया और घर की तरफ चला। रास्ते में उसे यह निश्चय हो गया कि उसका यह तीर लग ही जाएगा। वह सोचने लगा, पहले तो तनख्वाह पर 'कनवेसिंग' की जाएगी, बाद में जब उस चाय का काफी प्रचार हो जाएगा, तब अपने लड़कों के नाम से 'प्रेमचन्द-रामचन्द' फर्म खोलकर उसकी सोल-एजेन्सी ले ली जाएगी। कम्पिटीशन के जमाने में माल तो उम्मीद है, उम्दा देंगे ही, खूब बिकेगा। तब फिर उसका जीवन भी सुखी हो जाएगा। सतीश को उस सुख की कल्पना गुदगुदाने लगी। लपकता हुआ घर आया। कागज निकाला, कलम ढूंढी, फिर दावात की तरफ जो नजर डाली तो सूखी मिली। पानी डालना भी फिजूल साबित हुआ, क्योंकि उस दावात में अकेला पानी इतनी बार पड़ चुका था कि अबवाली पानी का रंग तो जरूर हलका आसमानी हो गया मगर लिखने के काबिल स्याही हरगिज न बन सकी।

बैठक से ही आवाज लगाई, "मैंने कहा सुनती हो ? जरा एक पैसा तो देना, स्याही लानी है।"

राधा दरवाज़े के पास आकर बोली, "मेरे पास सिर्फ दो ही पैसे हैं आज। दाल मंगानी है। अब भाई कहीं से कुछ लाओ, नहीं तो कल चूल्हा भी नहीं जल सकेगा, यह मैं तुम्हें बताए देती हूं।"

पैसे के प्रबंध की बात सुन सतीश खीझ उठा। बोला, "क्या कहीं रुपयों का पेड़ लगा है जो जाकर तोड़ लाऊं ?"

शायद पति की बेबसी देखकर ही राधा चुपचाप चल दी। सतीश को अपनी तकदीर पर उस वक्त रह-रहकर गुस्सा आ रहा था। अगर उसके पास पैसा होता तो वह निश्चय ही, उसी दम दुनिया की तमाम ईश्वर-विरोधी संस्थाओं का सदस्य हो जाता। चाय की एजेन्सी उस वक्त उसके लिए एक बहुत बड़े आकर्षण की वस्तु हो रही थी। इस गूलर के फूल को हाथ में पाकर भी उसे छोड़ना पड़ रहा था, इसका उसे आन्तरिक क्लेश था।

उसने सोचा, फ़िलहाल पैसों का प्रबन्ध करने के लिए उसे किसी और काम की तलाश करनी चाहिए। नौकरी पाने की ओर से वह एकदम निराश हो चुका था। हर पहलू पर काफी गौर कर चुकने के बाद, सहसा उसके दिमाग में आया कि जब तक चाय की एजेंसी की अर्ज़ी भेजने के लिए उसके पास एक आना पैसा नहीं आता, तब तक के लिए अगर वह किसी बीमा कम्पनी की एजेन्सी ले ले तो कैसा रहे ?

इन्श्योरेंस की एजेन्सी के तमाम फायदे उसके दिमाग में चक्कर काट गए। उसका एक दोस्त इसी काम की बदौलत आज मोटर-साइकिल पर सैर करता है। उसने सोचा, अगर यह काम चल गया तो फिर वह चाय की भी एजेन्सी ले लेगा। दो घोड़ों पर सवार होगा। बड़ा फायदा रहेगा। मकान की मरम्मत भी हो जाएगी। प्रेमू, रामू के कपड़े भी बन जाएंगे। और उनकी मां के सब गहने फिर बन जाएंगे। बेचारी मुंह से कुछ बोलती भी नहीं। आखिर वह भी जवान है। उसकी भी पहनने-ओढ़ने की तबीयत

होती है।

सब कुछ सोच-समझकर सतीश ने तय किया कि वह किसी बीमा कम्पनी की एजेन्सी ले लेगा। शहर में कई कम्पनियां हैं। सोचा, दो-तीन की एक साथ ही लेने में काफी फायदा होने की गुन्जाइश है। वह अर्जियां लिखने बैठा।

"स्याही नहीं है, अच्छा कोई हर्ज नहीं, स्याही भी घर में ही तैयार कर लूंगा।" सतीश बड़बड़ाता हुआ उठा, लालटेन लाया, उसकी कालिख खुर्च कर इकट्ठा की, दावात के नीले पानी में उसे घोला। मगर कालिख और पानी अलग ही अलग रह गए। स्याही फीकी रही। उसने सोचा, गर्म करने से शायद ठीक हो जाए। कटोरी में घोलकर उसे आग पर औटाने चला। राधा रोटी सेंक रही थी। दोनों लड़के बैठे खाना खा रहे थे। राधा ने पूछा, "यह क्या कर रहे हो ?"

"बोलो मत, स्याही तैयार कर रहा हूं। दो-तीन अर्जियां लिखनी हैं।"

एक ठंडी सांस लेकर राधा ने कहा, "अरे अर्जियां लिखते-लिखते तो दो साल बीत गए। कहीं से किसी मरी-पीटे का जवाब तक नहीं आता।"

सतीश काफी प्रसन्न था। इस बात को अनसुनी-सी कर बोला, "अरे, इस बार ऐसा काम कर रहा हूं कि पांचों घी में होंगी, तब बैठी-बैठी मजा करना।"

स्याही औटकर ठीक होने लगी। सतीश के मन में एक और विचार उत्पन्न हुआ। शहर में स्याही की भी काफी खपत होती है। दो-तीन स्कूलों के मास्टरों से भी उसकी जान-पहचान है। अगर वह स्याही बना-बनाकर बेचना शुरू कर दे तो भी काफी फायदा होगा। नवाम में कुछ बोतलें खरीदकर लाई जाएं। आसमानी, लाल रंग वगैरह खरीदा जाए। बस, दो-तीन रुपयों की लागत में उसके पास कम से कम पचास बोतलें तो तैयार हो ही जाएंगी। एक बोतल का दाम चार आना रखा जाएगा। उसे साढ़े बारह रुपये मिलेंगे। पांच रुपये घर-खर्च के लिए रखकर वह फिर स्याही बनाने का सामान लाएगा। साढ़े तीन लाख की आबादी के शहर में वह

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उतारकर वह धूप में लेट गया। सिर्फ दो पैसों के बगैर उसके सैकड़ों रुपये के व्यापार का नुकसान हो रहा था। उसे इस बात का काफी मलाल था। दुनिया-भर के कुलाबे भिड़ाते-भिड़ाते अन्त में उसे नींद आ गई।

शाम को तफरीह के खयाल से सतीश बाजार की तरफ चला। एक दोस्त की बिसातखाने की दूकान थी। पान खाने की गरज से सतीश वहीं बैठ गया। इधर-उधर की बातें चल रही थीं, तभी एक अंग्रेज महिला हाथ में बैग लटकाए दूकान पर आई। एक कम्पनी लखनऊ-डायरेक्टरी प्रकाशित करने जा रही थी। मेम साहब आखिरकार मुस्करा-मुस्कराकर विज्ञापन ले ही गईं। उनके जाने पर मित्र महोदय कहने लगे, "यह पांच रुपये खल गए, उस्ताद! मगर उस लेडी को भला कैसे मना कर देता?"

थोड़ी देर इधर-उधर की बातें कर सतीश घर वापस चला आया। बाजार की चहल-पहल जैसे उसे जहर मालूम पड़ रही थी।

घर आया। राधा ने खाने के लिए कहा। सतीश उस वक्त अपनी खयाली दुनिया में घूम रहा था। कुछ अनमना-सा होकर बोला, "ढककर रख दो। मुझे भूख नहीं है। सबेरे लड़कों के लिए काम आ जाएगा।"

चारपाई पर वह काफी देर चुपचाप पड़ा रहा। एकाएक उसकी आंखें चमक उठीं। झट से बैठते हुए आवाज दी, "मैंने कहा, सुनती हो?"

चौके-बरतन से छुट्टी पाकर राधा रसोईघर में खाना ढक रही थी। बोली, "सुनती हूं; अभी आई।"

"अरे भई अब देर न करो। तुमसे एक बड़ा जरूरी काम है। मतलब यह है कि फौरन चली आओ। ये घर के धन्धे तो रोज ही लगे रहते हैं।"

राधा इतमीनान से ही आई। बोली, "क्या कहते हो?"

"अरे, पूछो मत, मैंने एक ऐसी बढ़िया बात सोची है कि बस चार दिन में ही यह सब तकलीफें दूर हो जाएंगी।"

राधा जरा अक्खड़पन के साथ बोली, "वह चाहे बढ़िया बात हो या

घटिया—मैं साफ कहे देती हूं. मेरे पास अव सोने-चांदी का एक तार भी नहीं जो तुम्हें दे सकूं। सव कुछ तो बटोरकर ले गए।"

सतीश को यह वेवक्त की भैरवी बुरी लगी; झुंझलाकर वोला, "अरे बावा तो तुमसे मांग कौन रहा है? मैं तो एक दूसरी वात कहने जा रहा था और तुम…"

सन्तोष की सांस ले, ज़रा नर्म पड़कर राधा ने कहा, "क्या कह रहे थे?"

"वात यह है कि आज मैंने वड़े मज़े की वात देखी।"

"क्या?"

"परसोतम की दूकार पर वैठा था। इतने में जनाव एक मेम आई। मैं समझा कुछ खरीदने आई होगी। मगर भाई, वह तो आते ही आते ऐसी फरटिंदार बात करने लगी कि कुछ पूछो मत। कहने लगी, देखिए यह बड़ी अच्छी किताब छप रही है और इसमें आप अपना विज्ञापन ज़रूर दें। आपका वड़ा नाम हो जाएगा। बड़े-बड़े आदमी इसे पढ़ेंगे। आपकी दूकान चल निकलेगी। इस तरह की उसने तीन सौ वीस वातें वनानी शुरू कीं। अव परसोतम वेचारे से 'नाही' करते न वन पड़ा। चुपचाप पांच रुपये निकालकर दे दिए।"

राधा ने लापरवाही के साथ मुंह वनाकर कहा, "अरे ये मेमें वड़ी चरवांक होती हैं।"

"चरवांक की वात नहीं। देखो तो, कैसे मज़े में खट से पांच रुपये पैदा कर ले गई! इसी तरह उसने न जाने दिन-भर में कितने रुपये पैदा कर लिए होंगे।"

राधा ने कोई उत्तर न दिया।

थोड़ी देर चुप रहकर सतीश वोला, "मैंने कहा, अगर हिन्दुस्तानी औरतें भी इसी तरह काम किया करें तो वड़ा अच्छा हो।"

राधा वोली, "हिन्दुस्तानी वेचारी को कौन पूछेगा? न तो वे मेमों की तरह खवसूरत होती हैं और न उनका-सा छत्तीसापन ही उन्हें

आता है।"

सतीश एक क्षण रुककर फिर कहने लगा, "मगर भई, सच कहता हूँ कि तुम उस मेम से भी लाख गुना ज़्यादा खूबसूरत हो।"

राधा ओठों में ही मुस्कराई, कहा, "अरे जाओ भी, बहुत बातें न बनाया करो। भला कहाँ मेम और कहाँ मैं ?"

"तो तुम मज़ाक समझ रही हो। मैं तुमसे बिलकुल सच कहता हूँ, मगर भगवान की दया से तुम्हें ज़रा गुण मिलने लगे तो लाखों में एक निकलो, मगर यह कहो कि नसीब से मेरे पाले पड़ गईं, वरना तुम तो रानी बनने लायक हो रानी !"

राधा रानी ने हमदर्दी दिखलाते हुए कहा, 'मुझे रानी बनने की चाह नहीं। मैं अपने घर में ही सुखी हूँ। भगवान् करे, तुम बने रहो, मुझे और कुछ न चाहिए। तुम क्या कुछ कम खूबसूरत हो, मगर यह कहो कि चिन्ता शायद तुम्हें खाए जा रही है।" कहते हुए उसने एक निश्वास छोड़ दी।

सतीश ने मौका देखा। कहा, "मैंने एक बात सोची है। अमीनाबाद में मैजिक लालटेन से स्लाइड दिखाए जाएँ। बड़ा फ़ायदा रहेगा। हर दुकानदार से पाँच रुपया महीना चार्ज किया जाए। महीने-भर में कम से कम सौ रुपये की आमदनी तो हो ही जाएगी।"

राधा की आँखें चमक पड़ीं। कहा, "तो फिर क्यों नहीं करते ?"

"भई, बात यह है कि यह काम अकेले मेरे बूते का नहीं। अगर तुम भी ज़रा मदद करो तो कल से ही शुरू कर दूँ।"

"मैं भला इसमें तुम्हारी क्या मदद कर सकती हूँ ?"

सतीश गम्भीरता के साथ बोला, "सुनो, अब हम लोग बहुत ठोकरें उठा चुके। तुम अब ये सब हाय-हाय छोड़ो। मैं तुम्हें दो-तीन दिन के अन्दर शहर की सब बड़ी-बड़ी दुकानें दिखा दूँगा। सब कायदे-कानून भी समझा दूँगा। बस, फिर तुम सबसे मिलकर विज्ञापन ले लेना। एक औरत को देखकर सब चुपचाप रुपये निकालकर दे देंगे, समझीं ? बस फिर मज़े से ज़िन्दगी बीतेगी।"

"चलो हटो। बहुत ज़्यादा फिजूल की बकबक न किया करो। अहा-हा, बड़ा अच्छा मालूम पड़ेगा जब मैं दूकान-दूकान घूमती फिरूंगी। चार बिरादरीवाले तुम्हारी खूब तारीफ करेंगे!"

"अरे बिरादरीवाले जाएं चूल्हे में। भला इसमें बुराई ही क्या है? अपना पेट पालते हैं, कोई चोरी-बदमाशी तो करते नहीं।"

"वह चाहे जो कुछ भी हो, मैं इस तरह नहीं घूम सकती। भूखों मर जाना कबूल है, मगर इस तरह अपने बाप-ससुर का नाम मैं नहीं उछाल सकती। तुम्हारा क्या, तुमने तो सब हया-शरम अब भून खाई है।"

'इसमें हया-शरम की क्या बात है? मेमों को देखो, इस तरह लाखों रुपया पैदा कर लेती हैं। अमरीका, जापान, जर्मनी—सब जगह ऐसे ही होता है। हमारे देश में इसे बुरा समझते हैं, तभी तो यह गरीबी भुगतनी पड़ती है। कोई काम नहीं चलता। हमारी औरतें तो दुनिया-भर का ढकोसला लेकर बैठ जाती हैं। कायदे की बात कहो तो बाप-ससुर का नाम उछलने लगता है, साहब।" सतीश ने खीझकर कहा।

राधा भी गर्मा उठी। बोली, "तो फिर किसी मेम से ब्याह क्यों नहीं कर लेते? वह गली-गली कमाती फिरेगी! तुम बैठे-बैठे मज़ा करना।"

धीरे-धीरे बात का बतंगड़ बनने लगा। अन्त में हारकर सतीश ने हाथ जोड़े, कहा, "अच्छा बाबा, माफ करो। गलती हुई। मैंने तो एक कायदे की बात कही थी। यह सब दुख-दलिद्दर दूर हो जाता। मगर तुम—खैर।"

सुलह तो हो गई, मगर सतीश को रात-भर मलाल रहा। उसने इतनी अच्छी स्कीम सोची थी कि अगर विलायत में पैदा होता तो लाखों कमा लेता।

तड़के ही उठकर सतीश कई जगह ट्यूशन की तलाश में गया। लौटकर पड़ोसी से ब्लेड लिया। हजामत बनाई, कपड़े पहने। बीमा कम्पनियों

में गया; एजेन्सी, प्रोपोजल फार्म, प्रास्पेक्टस वगैरा लेकर दिन-भर कई सेठों के यहां 'कनवेसिंग' करता रहा। मगर सब मेहनत बेसूद···बेकार। सतीश खीझ उठा। ढाई बज रहे थे ! भूख कड़ाकेदार लग रही थी। सतीश घर की तरफ चला। दरवाजे पर ही म्युनिसिपलिटी का आदमी आवाज लगा रहा था। पूछने पर मालूम हुआ, टैक्स अदा न करने के सबब से वह पाइप का 'कनेक्शन' काटने के लिए आया है।

झुंझलाया हुआ तो था ही, सतीश एकदम चीख उठा, "ले साले, काट डाल बम्बा। अब नहीं पीएंगे पानी। ले काट।"

सतीश ने आगे बढ़कर खुद ही बम्बे का खजाना खोल दिया, फिर तेजी से घर के अन्दर जा राधा से बोला, "सुनती हो जी, बम्बा कट रहा है।"

वह बिलकुल चुप रही। सतीश भी चुपचाप चारपाई पर आंखें बन्द कर लेट रहा।

आध घण्टे बाद उसने धीरे से उठकर कहा, "सुनती हो भई, अब ये तकलीफें तो मुझसे नहीं सही जाती। चलो कांग्रेस में नाम लिखा लें। मिनिस्ट्री अब खत्म हो ही गई है। आन्दोलन छिड़ेगा ही। अरे कम से कम जेल में रोटियां तो मिल ही जाएगी।"

राधा हंसी, बोली, "और ये बच्चे ?"

सतीश ने छूटते ही जवाब दिया, "मैंने सोच लिया है। इन्हें किसी अनाथालय में भेज दूंगा।"

(१९३९ ई०)

छापे के हुरूफ

"ककहरा ! मस्ता !! कामा !!! क्वाड—हम पूछिति हयि हमरे केसन महियां यू ससुर अलई क पलवा जौनु भरा आय, यू कौने दिन हमरे काम आई ?···दुनिया भरे क्यार वाहिहातु···ससुर···पराई वहू-वेटिन से दीदा मटकावा औ···वस !···रेंकि उठे गदहा अस, 'आह ! प्रिये नूपुर की रुनझुन'···ईमा ससुर टाइप फंसाओ ! हिः !!"

"अरे का भा हो ? यू प्रिये का विगारिसि आय तुम्हार सुकुल जी।"

सुकुल जी 'स्टिक' रखकर कान से ऐनक की डोरी खोलते हुए बोले, "अरे का सुकुल जी ससुर ! कबिता लिखति आंय जेहि क्यार गोड़-मूड़ कर्तों ससुर सूझै नाहिं पर्ति आय ! प्रिये-प्रिये गोहरावति हैं···औ तेहिमा ससुर बाडर लगाओ, औ फूल वनाओ, औ वेला लगाओ। च्वांगा सारे नहिं के।"

"अरे होई हो !···तमाखू खैहिहौ सुकुल जी ?"

"लाओ।···परौं ते तमुखुये ससुर नाहीं खावा। राम परसाद परौं भिनसारे खिलखिलाय के बटुआ लावा रहै।···उहि के वाद उहौ ससुर गुम हुइ गवा।···बटुआ।"

सुकुल जी ने एक गहरी सांस ली।

तभी आए सम्पादक जी।

"सुकुल जी। कहिए क्या हो रहा है ?"

"अरे होई का ?—उहै प्रिये वाली कविता कम्पोज कै रहे हन। बैजू बनाइन तमाखू, हम कहा लाओ हमहूं फांकि लेई। परों राम परसाद वटुमा लाइके दिहिन रहै! तुमहू लैहिहो हो सम्पादक जी ? बैजू, इनहू का खिलाओ।"

"और सुनाओ सुकुल जी! छनती-बनती है कि नहीं ?"

"हा! छनति आय!"

"खूब टन्न हैं ?"

"हा टन्नै आय! टन्न न छानी तौ का ससुर आजु काम कै सकिति रहै ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"हुआ क्या!...कुछौ नहीं...यहै कहिति रहन यू ससुर प्रिये-प्रिये नूपुर की रुनझुन...हमरे वाप-दादौ अस कविता कम्पोज न किहिन हुइहैं।...प्रिये-प्रिये क्या ? हरामजादे सारे नहि के।"

दोनों हाथ कमर पर रखकर सीना आगे की ओर झुकाते हुए मुंह बनाकर सुकुल जी ने फंकी लगाई और धोती से हाथ पोंछ लिए।

सम्पादक जी मुस्कराए। सुकुल जी के कन्धे को बड़ी गर्मजोशी के साथ हाथ से झिझोरते हुए बोले, "अरे कुछ जवानों का खयाल भी कीजिए सुकुल जी। आपकी तो दाढ़ी सफेद हो चुकी।"

पिच्च से थूककर सुकुल जी कुछ तैश के साथ बोले,"अरे क्यासफेद हुई गई ससुर ? आजु-काल्हि के जवान-जवान लरिका दिखाय देई...मूड़े भरि महिया याकौ करियान मिली। और ऊपर तें चसमा लगावति आयं ससुर।"

"क्यो गुरू! ये सारी गर्मागर्म फब्तियां हमारे ही ऊपर हैं ?"

"नाहीं, तुम्हारे ऊपर का ...तुम तौ ससुर सम्पादक जी आओ। मुदा वात कहिति हयि हम। कौन जवान ते हम कम हयि ? ई बिरजेसौ सार हमरे आगे का जवान बनी, जौन ई प्रिये-प्रिये लिखिमि आय ? बेईमान! हरामजादा ससुर!!"

सम्पादक जी हंसे। कहा, "अरे, अरे, आज ये वृजेश जी पर इतनी नाराज़ी क्यों सुकुल जी ? वह तो आपके पड़ोसी हैं।"

सुकुल जी मुंह वना-विगाड़कर धीरे-धीरे वोले, "नाहीं, नराजी का। ऐसनै वात कहा।"

"उदाहरन दिया। हैं हो सुकुल जी ?"

सुकुल जी अपने चश्मे की डोरी अनमने भाव से हाथ में लपेट-लपेटकर खोल रहे थे। वैजू की वात पर एकाएक चीख उठे।

"उदाहरन नाहीं सीताहरन।···चले हुआं से उदाहरन वनिकै ! जाओ-जाओ, काम करौ आपन। कायदा-अदव ससुर सब मूड़ै पै धरि लिहिन ! उदाहरन लै के चले हैं।···सूझत नाहीं, सम्पादक जी ठाड़ हैं।···हां साहेव, आप का पुरूफ लाये हौ ? खुद काहे तकलीफ फरमावा ? खैर ! तौ अव ई पुरूफ फैनल आया न ? दीक्षित जी तौ मीन-मेख न निकालैंगे ?"

"नहीं-नहीं फाइनल ही है। इसे करैक्शन के वाद मशीन पर भेज दीजिए।"

ओठों ही ओठों से मुस्कराकर सम्पादक जी ने उत्तर दिया।

"तौ प्रिंट-आडर तौ लिखौ साहेव ! हमार ज़िम्मेदारी आती है कि नहीं ?"

"अरे-अरे ! भूल गया ! लाइए लिख दूं।"

सम्पादक जी 'फार्म' के आखिरी पेज पर प्रिंट-आर्डर लिखने लगे। सुकुल दूसरे पेजों के करैक्शन उलट रहे थे। एकाएक एक जगह देखते-देखते कह उठे।

"साहेव, ई-ई विलाक ससुर अव मटर में नहीं लग सकता। ई फजूल क्यार करक्सनु आय।"

सम्पादक जी ने पेज की तरफ देखकर धीरे से समझाते हुए कहा, "मगर लेखिका का व्लॉक जाना ज़रूरी है सुकुल जी, लगा दीजिए, जरा तकलीफ तो होगी।"

दो सेकेण्ड तक चुप रहकर फिर एक निश्वास छोड़ कमर तानते हुए मुकुन्द जी बोले, "अच्छा साहब हुइ जाएगा।"

सम्पादक जी चले गए। मुकुल जी ने एक बार लेख का शीर्षक ज़ोर-ज़ोर से अपने लहजे में पढ़ा, "ह्-मा-हमारे भी-दिल है···हमारे भी दिल है···लेखिका, सि-री-म-ती ललितादेवी।···गुसाईं जी नीकी बात कहि गए—'मूढ़, गवार, ढोल, पसु, नारी।'···मारिन का जूता चही—जूता—नालदार।—हमारे भी दिल है! ···एक तो पचास सनक गनै फिर भूले फिर लगावें।···हमारे भी दिल है! हिः··· हे बैजू, हटाओ ईका। करो करकमन! हमते, यू न होई! ···न लाज न सरम! छि.।"

मुकुल जी ने प्रूफ बैजू की ओर फेंक दिया। बैजू चुपचाप अपना काम करता रहा।

मुकुल जी ने उससे पूछा, "का कम्पोज कै रहे हौ हो?"

बैजू ने ज़ोर-ज़ोर से पढ़ा, "बूढ़े भी जवान हो गए'···कोकशास्त्र बटी बयार विज्ञापन···करै जाइनि हुहि।"

मुकुल जी थोड़ी देर खोपड़ी खुजाने के बाद बोले, "तुम रहे देओ, मैटर हमैं देओ! तुम ईमा करेक्सन करो। विलाक फिट करो। लाग्रो।"

मुकुल विज्ञापन कम्पोज करने लगे।

थोड़ी देर बाद बैजू से पूछा, "का हो, ई विज्ञापन इहै फरमा महियां जाय रहा है न?"

"हां! काहे?"

"काहे का! हम कहा दुई ठे पत्ती घोटि लेइति, मुदा जाए देओ। काम कै लेई। तनी तमाखू तौ बनाय देयो हो! ···राम परसाद बटुआ हमार खोय दिहिस! ···अच्छा! बूढ़े भी जवान हो गए।'···अय? कै तौ रहे हम कम्पोज?"

"मुदा तुम तै यू पूछिस को?" बैजू ने हसकर कहा।

मुकुल जी भी हस पड़े। बोले, "हम जाना, तुम ससुर पूछयो हमने। हिः! ···ई विज्ञापन का विरजेस बयार कविता के साथै फिट करिति हुयि,

[illegible]

[illegible]

[illegible] मुकुल जी [illegible] सम्पादक [illegible]

[illegible]

'अरे मुकुल जी! [illegible]" [illegible] देखते हुए सम्पादक जी ने मुकुल जी को [illegible] पूछा।

मुकुल जी मेज पर हाथ रखकर बड़ी [illegible] के साथ [illegible] बोले, 'साहब [illegible] कम्पोजीटरी भी! [illegible] कवि और महाकवि बनाता। [illegible] कम्पोज के लिए तो कौनो बुराई आय?"

सम्पादक जी ने हँसकर कहा, "आप इस विज्ञापन के बारे में? भई क्या खुशी आपको भी?"

इतने में प्रधान सम्पादक दीक्षित जी भी आ गए। सम्पादक जी ने हँसकर [illegible] उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'मुकुल जी अपनी पब्लिसिटी कर रहे हैं, 'पं० [illegible] मुकुल कम्पोजीटर कोकशास्त्र यही दवा खाकर बूढ़े से जवान हो गए।' डाक में 'पेट' में कम्पोज किया है आपने।"

दीक्षित जी कहकहा लगाकर हँस पड़े, कहा, "अरे '[illegible] लाइन' में करते। क्या मजा आएगा 'पेट' में, मुकुल जी?"

मुकुल जी कुछ अप्रतिभ-से हो फौरन कमरे से बाहर हो गए। कुछ सोचा, फिर लौटे। दरवाजे तक आए। इशारे से सम्पादक जी को बाहर बुलाया। और अकेले में ले जाकर फिर बोले, "साहेब, हमार जिन्दगी आपै के हाथ में है।"

"क्यों भई ? क्या बात है।"

"साहेब ! बस ज़िन्दगी बचाओ हमार।"

कहते-कहते उनकी आखों मे आसू छलछला आए।

सम्पादक जी ने दिलासा दिया। बोले, "बात क्या है सुकुल जी ?"

मुकुल जी आसू पोंछते हुए बोले, "ई बिज्ञापन वाली बात ऐसने इहै कविता के साथ जाय दीजिए साहेब !"

"क्यो ?"

"क्यो क्या साहेब ! का कही साहेब। हमार जिंदगी बचाइए।"

"अरे हुआ क्या ? आखिर कुछ कहोगे भी या ऐसे ही ···"

"का कही साहेब।···तुम ई जान लेओ अकि पाच बरसै हमरे ई दूसरे ब्याहे के भईं। चारि बरस का हमार राम परसाद भवा। और का कही साहेब, परौं ई ससुर बिरजेश के साथै भाग गई साहेब। राम परसादौ हमारा लै गई। उइके बिना ज़िन्दगी फीकी आय। ई पढ़ैगी तो साथिति है लौटि आए ! राम परसादौ हमार आय जाएगा।" जिनका कोई खोय जाता है, उइ बिज्ञापन छपावति हैं। याकु दाइ ई छापे के हरफन तें हमहूं फैंदा उठाय लेई। तुमई जानि लेओ अकि बीस बरसें भई कम्पोज़ीटरी ससुर···"

सुकुल जी बार-बार आसू पोंछते और बार-बार उनकी आखें भर आती थीं।

(१९४१ ई०)

एटम बम

चेतना लौटने लगी। सांस में गंधक की तरह तेज बदबूदार और दम घुटानेवाली हवा भरी हुई थी। कोबायाशी ने महसूस किया कि बम के उस प्राण-घातक धड़ाके की गूंज अभी उसके दिल में धंस रही है। भय अभी उसपर छाया हुआ है। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा है। उसे सांस लेने में तकलीफ होती है, उसकी सांस बहुत भारी और धीमी चल रही है।

हारे हुए कोबायाशी का जर्जर मन इन दोनों अनुभवों से खीजकर कराह उठा। उसका दिल फिर गफलत में डूबने लगा। होश में आने के बाद, मृत्यु के पंजे से छूटकर निकल आने पर जो जीवनदायिनी स्फूर्ति और शान्ति उसे मिलनी चाहिए थी, उसके विपरीत यह अनुभव होने से ऊबकर, तन और मन की सारी कमज़ोरी के साथ वह चिढ़ उठा। जीवन कोबायाशी के शरीर में अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए विद्रोह करने लगा। उसमें बल का संचार हुआ।

कोबायाशी ने आंखें खोलीं। गहरे कुहासे की तरह दम घुटाने वाला ज़हरीला धुआं हर तरफ छाया हुआ था। उसके स्पर्श से कोबायाशी को अपने रोम-रोम में हज़ारों सुइयां चुभने का-सा अनुभव हो रहा था। रोम-रोम से चिनगियां छूट रही थीं। उसकी आंखों में भी जलन होने लगी, पानी आ गया। कोबायाशी ने घबराकर आंखें मींच लीं।

लेकिन आँखें बन्द कर लेने में तो और भी ज्यादा दम घुटता है। कोबायाशी के प्राण घबरा उठे। वे कहीं भी सुरक्षित न थे। मौत अंधेरे की तरह उसपर छाने लगी। यह हीनावस्था की पराकाष्ठा थी। कोबायाशी की आत्मा रो उठी। हारकर उसने फिर अपनी आखें खोल दीं। हठ के साथ वह उन्हें खोले ही रहा। जहरीला धुआ लाल मिर्च के पाउडर की तरह उसकी आखों में भर रहा था। लाख तकलीफ हो, मगर वह दुनिया को कम से कम देख तो रहा है। बम गिरने के बाद भी दुनिया अभी नेस्त-नाबूद नहीं हुई—आखें खुली रहने पर यह तसल्ली तो उसे हो ही रही है। गर्दन घुमाकर उसने हिरोशिमा की धरती को देखा, जिसपर वह पड़ा हुआ था। धरती के लिए उसके मन में ममत्व जाग उठा। कमजोर हाथ आप ही आप आगे बढ़कर अपने नगर की मिट्टी को स्पर्श करने का सुख अनुभव करने लगे।

···मन नहीं खोया। अपने अन्दर उसे किसी जबरदस्त कमी का एह-सास हुआ। यह एहसास बढ़ता ही गया। आन्तरिक हृदय में सुख का अनुभव करते ही उसकी कल्पना दुःख की ओर प्रेरित हुई। स्मृति झकोले खाने लगी।

चेतना-बुद्धि पर छाए हुए भय से बचने के लिए अन्तर-चेतना को किसी बात पर विस्मृति का मोटा पर्दा पड़ रहा था। मौत के चंगुल से छूटकर निकल आने पर, पार्थिवता की बोझ-स्वरूप धरती के स्पर्श से, जीवन को स्पर्श करने का सुख उसे प्राप्त हुआ था। परन्तु भावना उत्पन्न होते ही उसके सुख में घुन भी लग गए। भय ने नीवें डगमगा दीं। अपनी अनास्था को दबाने के लिए वह बार-बार जमीन को छूता था। अन्तर के अविश्राम को चमत्कार का रूप देते हुए, इस सूनी जगह में पड़े रहने के बावजूद अपने जीवित बच जाने के बारे में उसे भगवान की लीला दिखाई देने लगी।

करुणा सोते की तरह दिल में फूट निकली। पराजय के आंसू इस तरह अपना रूप बदलकर दिल में घुमेड़ें ले रहे थे। जहरीले धुएं के कारण आखों में भरे हुए पानी के साथ-साथ वे आंसू भी घुल-मिलकर गाल से ढुलकने हुए

जमीन पर टपकने लगे।

बेहोश होने से कुछ मिनट पहले उसने जिस प्रलय को देखा था, उसकी विकरालता अपने पूरे वजन के साथ कोवायाशी की स्मृति पर आघात करके उसके टुकड़े-टुकड़े कर रही थी। वह ठीक-ठीक सोच नहीं पा रहा था कि जो दृश्य उसने देखा, वह सत्य था क्या?…धड़ाका! जूड़ी बुखार की कंपकंपी की तरह जमीन कांप उठी थी। बम था—दुश्मनों का हवाई हमला। हजारों लोग अपने प्राणों की पूरी शक्ति लगाकर चीख उठे थे।…कहां हैं वे लोग? वे प्राणान्तक चीखें, वह आर्तनाद जो बम के धड़ाके से भी अधिक ऊंचा उठ रहा था—वो इस समय कहां है? खुद वह इस समय कहां है? और…

कुछ खो देने का एहसास फिर हुआ। कोवायाशी विचलित हुआ। उसने कराहते हुए करवट बदलकर उठने की कोशिश की, लेकिन उसमें हिलने की भी ताब न थी। उसने फिर अपनी गर्दन जमीन पर डाल दी। हवा में काले-काले जर्रे भरे हुए थे। धुआं, गर्मी, जलन, प्यास—उसका हलक सूखा जा रहा था। बेचैनी बढ़ रही थी। वह उठना चाहता था। उठकर अपने चारों तरफ देखना चाहता था। क्या?—यह अस्पष्ट था। उसके दिमाग में एक दुनिया चक्कर काट रही थी। नगर, इमारतें, जनसमूह से भरी हुई सड़कें, आती-जाती सवारियां, मोटरें, गाड़ियां, साइकिलें …और…और…दिमाग इन सबमें खोया हुआ कुछ ढूंढ़ रहा था: अटका, मगर फौरन ही बढ़ गया। जीवन के पच्चीस वर्ष जिस वातावरण से आत्मवत् परिचित और घनिष्ठ रहे थे, वह उसके दिमाग की स्क्रीन पर चलती-फिरती तस्वीरों की तरह नुमांया हो रहा था। लेकिन सब कुछ अस्पष्ट, मिटा-मिटा-सा। कल्पना में वे चित्र बड़ी तेज़ी के साथ झलक दिखाकर बिखर जाते थे। इससे कोवायाशी का मन और भी उद्विग्न हो उठा।

प्यास बढ़ रही थी। हलक में कांटे पड़ गए थे। और उसमें उठने की ताब न थी। एक बूंद पानी के लिए ज़िन्दगी देह को छोड़कर चले जाने की

छाती से सटी थी, और शरीर फिर भी कहीं रुक गया था। बांकादासी का इस तरह मौन हो न रह सका। बड़े दर्द के साथ उसने बातें शुरू कर दीं।

[illegible] भी न आई।

बांकादासी सोच रहा था, जैसे ईश्वर कोई भारी अपराध किया था जिसकी वे सजा भुगत रहे हैं? अमीरों और गरीबों का अंतर कौन ऐसा आदमी था जो यह सह सकाई? [illegible] था? दुनिया भर दुखमों [illegible], जो इस लोक में। इसने उसका क्या बिगाड़ा था? इस बड़े [illegible] रहा है। [illegible] न दिखता। मेरी कुटी और मुझे क्यों छिन रही है? ईश्वर! मैंने ऐसा क्या अपराध किया था?"

बालगोपाल बांकादासी के लिए से उमड़ने लगा। आंखों से टपा-टप आंसू बहने लगे। उसके बड़े मुलायम के टुकड़े से लगी और आंखबांधे [illegible] के [illegible] कर [illegible] परिवार कर रहा था। आज [illegible] लिए हैं वह थे। भारी-भारी हिचकियां बंध गई थीं, जिससे शरीर को और [illegible] बार-बार [illegible] रहे थे। इस तरह रोने से दम घोटने [illegible] हुआ छाती-छाती पेट में आता था। उसका जी मिचलाने लगा। उसके प्राण अटकने लगे।

आंखों के पास से एक लम्बी हिचकी को घेरते हुए जो आग थी [illegible] कई पल तक वह उसी अन्दर ही घेरे रहा, फिर मुश्किलों से वह धीरे-धीरे टूटी। तो भी नहीं [illegible]! —बांकादासी की आंखों में फिर पानी भर आया। कमजोर हाथ उठाकर उसने बेजान-सी उंगलियों से अपने आंसू पोंछे।

आंखों के पास से उंगलियां के हटते धीरे-धीरे हुए, उसकी जगह से [illegible] आई। बांकादासी की [illegible] जबान और हृदय को फिर से [illegible] की [illegible] हुई। [illegible] फिर [illegible]। [illegible] उसने अपनी आंसुओं से [illegible] उंगलियों [illegible] से [illegible] उंगलियों के बीच में [illegible] [illegible]

[illegible]

कोवायाशी के दोनों हाथों में ताक़त आ गई। नम आंखों से लेकर गीले गालों के पीछे कनपटियों तक आंसू की एक बूंद जुटाकर अपनी प्यास बुझाने के लिए वह उंगलियां दौड़ाने लगा। आंसू खुश्क हो चले थे, और कोवायाशी की प्यास दम तोड़ रही थी।

चक्कर आने लगे। गफलत फिर बढ़ने लगी। बराबर सुन्न पड़ते जाने की चेतना अपनी हार पर बुरी तरह से चिढ़ उठी और उसकी चिढ़ विद्रोह में बदलती गई। गुस्सा शक्ति बनकर उसके शरीर में दमकने लगा—काबू से बाहर होने लगा। माथे की नसें तड़कने लगीं। वह एकदम अपने काबू से बाहर हो गया। दोनों हाथ टेककर उसने बड़े ज़ोर के साथ उठने की कोशिश की। वह कुछ उठा भी। कमज़ोरी की वजह से उसे फिर मूर्च्छा आने लगी। उसने संभाला : मन भी तन भी। दोनों हाथ मज़बूती से जमीन पर टेके रहा। हांफते हुए, मुंह से एक लम्बी सांस ली, और अपनी भुजाओं के बल पर घिसटकर वह कुछ और उठा। पीठ लगी तो घूमकर देखा—पीछे दीवार थी। उसने ज़िन्दगी की एक और निशानी देखी। कोवायाशी का हौसला बढ़ा। मौत को पहली शिकस्त देकर पुरुषार्थ ने गर्व का बोध किया। परन्तु पीड़ा और जड़ता का ज़ोर अभी भी कुछ कम न था। फिर भी उसे शान्ति मिली। दीवार की तरफ देखते ही ध्यान बदला। सिर उठाकर ऊंचे देखा, दीवार टूट गई थी। उसे आश्चर्यमय प्रसन्नता हुई। दीवार से टूटा हुआ मलबा दूसरी तरफ गिरा था। भगवान ने उसकी कैसी रक्षा की! जीवन के प्रति फिर से आस्था उत्पन्न होने लगी। टूटी हुई दीवार की ऊंचाई के साथ-साथ उसका ध्यान और ऊंचा गया कि यह तो अस्पताल की दीवार है।···अभी-अभी वह अपनी पत्नी को भर्ती कराके बाहर निकला था। सवेरे से उसे दर्द उठ रहे थे, नई ज़िन्दगी आने को थी। पत्नी, जिसे बच्चा होने वाला था···डाक्टर, नर्स, मरीज़ों के पलंग···डाक्टर ने उससे कहा था···बाहर जाकर इन्तज़ार करो।···वह फिर बाहर आकर अस्पताल

के नीचे ही बरगद की कच्ची सड़क पर सिगरेट पीते हुए टहलने लगा था। आज उसने काम से भी छुट्टी ले रखी थी। वह बहुत खुश था।—तभी अचानक आसमान पर कानों के पर्दे फाड़ने वाला धमाका हुआ था। अंधा बना देने वाली तीव्र प्रकाश की किरणें कहीं से फूटकर चारों तरफ बिखर गईं। पलक मारते ही काले धुएं की मोटी चादर बादलों से घिरे हुए आसमान पर तेजी से बिछती चली गई। काले धुएं की बरसात होने लगी। चमकते हुए विद्युत्कण सारे वातावरण में फैल गए थे। सारा शरीर झुलस गया, दम घुटने लगा था। सैकड़ों चीखें एक साथ सुनाई दी थीं। इस अस्पताल में भी आई होंगी। दीवार उसी तरफ गिरी है और इन चीखों में उसकी पत्नी की चीख भी जरूर शामिल रही होगी…कोबायाशी का दिल तड़प उठा। उसे अपनी पत्नी को देखने की तीव्र उत्कंठा हुई।

होश में आने के बाद पहली बार कोबायाशी को अपनी पत्नी का ध्यान आया था। बहुत देर से जिसकी स्मृति खोई हुई थी, उसे पाकर कोबायाशी को एक पल के लिए राहत हुई। इससे उसकी उत्कंठा का वेग और भी तीव्र हो गया।

साल-भर पहले उसने विवाह किया था। एक वर्ष का यह सुख उसके जीवन की अमूल्य निधि बन गया था। दुःख, यातना और संघर्ष के पिछले चौबीस वर्षों के मरुस्थल-से जीवन में आस की यह मधुर चेतना जुड़कर सुख-शांति के एक वर्ष को पानी की एक बूंद की तरह सोख गई थी।

बचपन में ही उसके मां-बाप मर गए थे। एक छोटा भाई था जिसके भरण-पोषण के लिए कोबायाशी को दस बरस की उम्र में ही बुजुर्गों की तरह मर्द बनना पड़ा था। दिन और रात को जोड़कर मेहनत-मजूरी की, उसे शाहजादे की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया। तीन बरस हुए वह फौज में भरती होकर चीन की लड़ाई पर चला गया। और कभी न लौटा।

अपने भाई को खोकर कोबायाशी जिन्दगी से ऊब गया था। जीवन से लड़ने के लिए उसे कहीं से प्रेरणा नहीं मिलती थी। वह निराश हो चुका था। तभी मकान-मालकिन की लड़की उसके जीवन में नया रस ले आई।

उनका विवाह हुआ। और आज उसके घर में एक नई ज़िन्दगी आने वाली थी। आज सवेरे से ही वह बड़े जोश में था। उसके सारे जोश और उल्लास पर वह गाज गिरी ! ज़हरीले धुएं की तपिश ने उसके अन्तर तक को भून दिया था। वेदना असह्य हो गई थी—और चेतना लुप्त हो गई।

अपनी पत्नी से मिलने के लिए कोवायाशी सब खोकर तड़प रहा था। वह जैसे बच गया वैसे ही भगवान ने शायद उसे भी बचा लिया हो। लेकिन दीवार तो उधर गिरी है।

"नहीं !"—कोवायाशी चीख उठा। होश में आने के बाद पहली बार उसका कंठ फूटा था। सारे शरीर में उत्तेजना की एक लहर दौड़ गई। स्वर की तेज़ी से उसके सूखे हुए निष्प्राण कंठ में खराश पैदा हुई। प्यास फिर होश में आई। कोवायाशी के लिए बैठा रहना असह्य हो गया। अन्दरूनी जोम का दौरा कमज़ोर शरीर को झिझोड़कर उठाने लगा। दीवार का सहारा लेकर वह अपने पागल जोश के साथ तेज़ी से उठा। वह दौड़ना चाहता था। दिमाग में दौड़ने की तेज़ी लिए हुए, कमज़ोर और डगमगाते हुए पैरों से वह धीरे-धीरे अस्पताल के फाटक की तरफ बढ़ा।

फाटक टूटकर गिर चुका था। अन्दर मलवा-मिट्टी ज़मीन की सतह से लगा हुआ पड़ा था। कुछ नहीं—वीरान ! जैसे यहां कभी कुछ बना ही न था। सब मिट्टी और खंडहर ! दूर-दूर तक वीरान—खाली ! खाली ! खाली ! उसकी पत्नी नहीं है। उसकी दुनिया नहीं है। वह दुनिया जो उसने पच्चीस बरसों तक देखी, समझी और बरती थी, आज उसे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती। सपने की तरह वह काफूर हो चुकी है।

मीलों तक फैली हुई वीरानी को देखकर वह अपने को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया। इस महानाश के विराट शून्य को देखकर उसका अपनापन उसीमें विलीन हो गया। उसकी शक्ति उस महाशून्य में लय हो गई। जीवन के विपरीत यह अनास्था उसे चिढ़ाने लगी। टूटी दीवार का सहारा छोड़कर वह बेतहाशा दौड़ पड़ा। वह ज़ोर-ज़ोर से चीख रहा था : "मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"—मीलों तक उजड़े हुए नि

नगर के इस खंडहर में लाखों निर्दोष प्राणियों की आत्मा बनकर पागल कोबायाशी चीख रहा था : 'मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"

कैम्प अस्पताल में हज़ारों ज़ख्मी और पागल लाए जा रहे थे। डाक्टरों को फुर्सत नहीं, नर्सों को आराम नहीं, लेकिन इलाज कुछ भी नहीं हो रहा था। क्या इलाज करें ? चारों ओर चीख-चिल्लाहट, दर्द और यंत्रणा का हंगामा। "गोरा दुश्मन ! खुदा दुश्मन ! बादशाह दुश्मन !" पागलपन के उस शोर में हर तरफ अपने लिए दर्द था, अपने परिवार और बच्चों के लिए सवाल था, जिनकी यह सज़ा उन्हें मिली है ! और दुश्मनों के लिए नफरत थी, जिन्होंने बिना किसी अपराध के उनकी जान ली।

अस्पताल के बरामदे में एक मरीज दहन फाड़कर चिल्ला उठा : "मुझे क्यों मारा ? मुझे क्यों मारा ?"

अस्पताल के इंचार्ज डाक्टर सुजुकी इन तमाम आवाज़ों के बीच में खोए हुए खड़े थे। वह हार चुके थे। कल से उन्हें नींद नहीं, आराम नहीं, भूख-प्यास नहीं। ये पागलों का शोर, दर्द, चीख, कराह ! उनका दिल, दिमाग और जिस्म थक चुका था। अभी थोड़ी देर पहले उन्हें खबर मिली थी, नागासाकी पर भी एटम बम गिराया गया। वे इससे चिढ उठे थे : "क्यों नहीं बादशाह और वज़ीर हार मान लेते ?" क्या अपनी झूठी आन के लिए वह जापान को तबाह कर देंगे ?" उन्हें दुश्मनों पर भी गुस्सा आ रहा था, "इन्हें क्यों मारा गया ? ये किसीके दुश्मन नहीं थे। इन्हें अपने लिए साम्राज्य की चाह न थी। अगर इनका अपराध है तो केवल यही कि यह अपने बादशाह के मजबूरन बनाए हुए गुलाम हैं। व्यक्ति की सत्ता के शिकार हैं। संस्कारों के गुलाम हैं।···दुश्मन इन्हें मारकर खुश हैं। जापान की निर्दोष और मूक जनता ने दुश्मनों का क्या बिगाड़ा था जो उनपर एटम बम बरसाए गए ? विज्ञान की नई खोज की शक्ति आज़माने के लिए उन्हें लाखों बेज़बान, बेगुनाहों की जान लेने का क्या अधिकार था ? क्या यह

धर्म-युद्ध है ?—सदादर्शों के लिए लड़ाई हो रही है ? एटम का विनाशकारी प्रयोग विश्व को स्वतन्त्र करने की योजना नहीं, उसे गुलाम बनाने की जिद है। ऐसी जिद जो इन्सान को तबाह करके ही छोड़ेगी।···और इन्सानियत के दुश्मन कहते हैं कि एटम का आविष्कार मानव-बुद्धि की सबसे बड़ी सफलता है।···पागल कहीं के ! ···"

नर्स आई। उसने कहा, "डाक्टर ! सेन्टर से खबर आई है, और नये मरीज़ भेजे जा रहे हैं।"

डाक्टर सुजुकी के थके चेहरे पर सनक-भरी सूखी हंसी दिखाई दी। उन्होंने जवाब दिया : "इन नये मुर्दा मरीज़ों के लिए नई जिन्दगी कहां से लाऊंगा, नर्स ? विनाश-लोलुप स्वार्थी मनुष्य शक्ति का प्रयोग भी जीवन नष्ट करने के लिए ही कर रहा है, फिर निर्माण का दूसरा ज़रिया ही क्या रहा ? फेंक दो उन ज़िन्दा लाशों को, हिरोशिमा की वीरान धरती पर ! या उन्हें जहर दे दो ! अस्पताल और डाक्टरों का अब दुनिया में कोई काम नहीं रहा।"

नर्स के पास इन फिज़ूल की बातों के लिए समय नहीं था।—नये मरीज़ आ रहे हैं, सैकड़ों अस्पताल में पड़े हैं। वह डाक्टर पर झुंझला उठी, "यह वक्त इन बातों का नहीं है डाक्टर ! हमें ज़िन्दगी को बचाना है। यह हमारा पेशा है, फर्ज़ है। एटम की शक्ति से हारकर क्या हम इन्सान और इन्सानियत को चुपचाप मरते हुए देखते रहेंगे ? चलिए आइए, मरीज़ों को इंजेक्शन लगाना है, आगे का काम करना है।"

नर्स डाक्टर सुजुकी का हाथ पकड़कर तेजी से आगे बढ़ गई।

(१९४५ ई०)

सूखी नदियां

इंग्लैंड जाते हुए एक हवाई जहाज आल्प्स की पर्वतमाला से टकराकर तबाह हो गया है, यह खबर अखबारों में छपकर सवेरे की चाय के साथ मिसेज़ अहमद के पलंग पर पहुंच गई। और इस खबर को लेकर मिसेज अहमद आधे मिनट के लिए सकते के आलम में पहुंच गई। अहमद इसी जहाज से इंगलिस्तान गए थे। मिसेज़ अहमद का नन्हा-सा नाज़ुक दिल दहल गया। चीखकर रोने या बेहोश हो जाने को जी चाहा, मगर कमरे में कोई मौजूद न था। मिसेज अहमद की नज़रों के सामने वह वक्त आ गया जब अहमद ने चलते वक्त एयरोड्रोम में अचानक उनका आखिरी चुम्बन 'चुराया' था। आसपास खड़े सभी दोस्त-अहबाब··· मिस्टर, मिस, और मिसेज···हंस पड़े थे। कैसा मोहक नज़ारा था! कितना मादक!

वह चुम्बन मिसेज़ अहमद को इस वक्त भी अपने ओंठों से चिपका हुआ महसूस हुआ। दिल की दहलन में 'रोमांस' की गुदगुदी रेंग गई, ज्यों बर्फ में गरमी दौड़ी हो। ओंठों पर आई भीनी मुस्कान को मिसेज़ अहमद ने बड़ी चाह के साथ प्याले के गर्म घूंट से दबा लिया···

"अहमद, माई पुअर अहमद!" ··दर्द को चाय के गर्म घूंट के साथ वह दिल की गहराइयों में उतार ले गई।

और उन्हें खयाल आया कि आलम को उनके दर्द की खबर मिलनी

चाहिए। फौरन ही मलाबार हिल का वह खुशनुमा फ्लैट अपनी मालकिन की पियानो के सुर जैसी चीख से गूंज उठा। बैरा, ब्वाय, आया, टामी सबके सब कमरे में घिर आए। देखा कि मेम साहब अखबार को कलेजे से दबाए तकिये पर सिर डाले बेहोश पड़ी हैं। सबको कमरे में देखकर मिसेज अहमद को होश आ गया। बड़ी-बड़ी खूबसूरत आंखें खिड़की के सामने हहराते हुए समुद्र के ज्वार-सी उछल उठीं, और उन्होंने गम को तस्वीर की तरह फ्रेम में बांधकर अपनी रिआया के सामने इस तरह पेश किया गोया प्रेसमैनों से कह रही हों, "तुम्हारे साहब अब नहीं रहे।"

यह कहकर मिसेज़ अहमद फिर बेहोश हो गई।

ज़माने को दौड़ने में देर लगती है, मगर मिसेज़ अहमद के गम की इस खबर को उनके दोस्त-अहबाब तक दौड़कर पहुंचने में देर न लगी। दिन-भर दोस्तों और टेलीफोन की घंटियों का तांता बंधा रहा। शाम तक मिसेज़ अहमद की एक-एक आह, सिसकी, आंखों में आंसू लानेवाली बातें, अहमद के साथ अपने पहले मिलन, प्रेम, शादी, हनीमून और एयरोड्रोम के आखिरी चुम्बन तक की बातों के साथ तरतीबवार सध गई। देखने वाले सब एक मुंह से यही कहते थे, "ओह ! बेचारी मिसेज़ अहमद का दुख तो देखा नहीं जाता।"

मिसेज गुलशन भरूचा ने कहा, "जोने ! आक्खो ढारो ठई गियो। बेचारी ने कुछ भी नहीं खाया—पुअर मिसेज़ अहमद कैसा ढोका डिया है टकडीर ने !"

मिस्टर फीरोज़ भरूचा ने आगा हश्र कश्मीरी के ड्रामे पढ़-पढ़कर अपनी ज़बान को पारसी से फारसी बनाया है, और उसकी अदायगी में सोहराब मोदी से टक्कर लेते हैं। मिसेज़ अहमद के दुख पर अपनी मिसेज़ की पारसी-हिन्दुस्तानी का 'ढोका' उन्हें पत्थर के ढोंके की तरह लगा। तड़प को नाटक के ढंग से संवारकर सधी हुई बुलन्द आवाज़ में बोले,

" धोखा नहीं। कहना चाहिए कि उससे भी ज़ियादह ! (आह के साथ)

हिम्मत की खूबी देखिए

टूटी कहाँ कमन्द।

दो-चार हाथ जब कि

लबे बाम रह गया।

"अगर टूटना ही था तो इग्लैंड की सरसब्ज़ जमीन से टकराकर टूटता। कम-अज़-कम हम लोग अपने दोस्त के आखिरी वक्त पर पहुंचकर उनकी लाश पर अपनी मुहब्बत के चार फूल तो चढ़ा सकते ! मगर अफसोस !"

मिसेज़ अहमद कुछ देर से सोफे के सिरहाने पर अपनी बेजान गर्दन डाले, आंखों को हाथ से ढंके हुए पड़ी थी। मिस्टर भरूचा की बातें उनकी कल्पना की हर सतह को छूकर रोमानी खयाल की रंगीनियों से भर गईं। तुरन्त उत्साह में भरकर बोलीं, "व्हाट ए नाइस आइडिया। काश कि ऐसा होता। बर्फ से ढंके हुए कब्रिस्तान में जब इतने हिन्दुस्तानी मिलकर अपने बिछुड़े हुए साथी को आखिरी 'आनर्स' देते, तब इग्लैंड वालों को मालूम होता कि हमारे कौमी जज़्बात क्या होते हैं ! अहमद की मौत एक नेशनल हीरो की मौत की तरह याद की जाती। माई पुअर अहमद, अब ज़िन्दगी-भर के लिए उसकी याद एक दाग बनकर मेरे दिल में रह जाएगी। किसी सूरत से भी न भुला सकूंगी ''कभी भी न भुला सकूंगी।"

मिसेज़ अहमद की बड़ी-बड़ी खूबसूरत आंखें आंसुओं से नहाकर और भी खूबसूरत लगने लगीं, जिन्हें देखकर मिस्टर खड़वाला का दिल पंचर हो गया। उनके सोफे की बाह पर आकर बैठते हुए, उनके सिर को बड़े भाव से थपथपाकर बोले, "इतना गम न करो बिमी। तुम्हारी तन्दुरुस्ती खराब हो जाएगी।"

"आप ठीक कह रहे हैं मिस्टर खड़वाला"—भरे बदन के, गंजे, अधेड़ मिस्टर भड़कमकर संजीदगी का अवतार बनकर आगे बढ़े—"बिमला अगर इतना रंज करेगी तो इसे टी० बी० हो जाने का डर होगा। अभी तो बेचारी वर्मा के 'डायवोर्स-केस' से अपने मन को संभाल भी न पाई

थी कि यह दुख इसके सिर पर पड़ गया। कहावत है मराठी में कि चुलीं-तून निधून वैलांत पडणे…एक संकट से निकले कि दूसरे में पड़ गए।"

मिसेज़ अहमद ने बड़ी तड़प के साथ अपने लिए उछाली गई सहानुभूति को 'कैच' कर लिया। जज़्बात फिर आंखों में झलक पड़े। अल्फाज़ के साथ-साथ आह दिल से बाहर निकली, "आप सच कहते हैं, मिस्टर भड़कमकर! मेरी तमाम ज़िन्दगी ही एक दुख की कहानी है, दर्द का नग्मा है, एक ऐसी शमा है जिसे नसीब की आंधियां जलने से पहले ही बुझा-बुझा डालती है।"

"ए पोएटेस! ए डिवाइन फ्लेम!" मिस सोमा कापड़िया यों चहचहा उठीं गोया पिंजरा तोड़कर बुलबुल भागी हो। बेचारी की पूरी शाम एक मातमपुर्सी को लेकर बेरौनक हुई जा रही थी, और यह खयाल अब तो उनके मन पर मातम बनकर छाने लगा था। मिसेज़ अहमद के कविता-भरे बखान ने उन्हें मौका दिया, और चट से बात को मिस्टर अहमद की मौत से मिसेज अहमद की कविता की तरफ मोड़कर बड़े जोश के साथ बोली, "मैं बाज़ी लगाकर कह सकती हूं कि अपने प्रियतम की इस ट्रेजिक मौत से इंसपिरेशन लेकर विमला एक ऐसा मास्टरपीस महाकाव्य लिख सकती है जो कि शाहजहां के ताजमहल से भी ज़्यादा ठोस, और रोमियो-जूलियट की प्रेम-कहानी से भी ज़्यादा महान साबित होगा। ओफ मिस्टर वर्मा की जेलर जैसी उस कड़ी निगरानी और सख्तियों में विमला का अहमद के लिए तड़पना, मैं क्या भूल सकती हूं, वह दिन?… तब एक दिन ऐसी ही आंसुओं से धोई आंखों से मुझे देखकर इसने मेरे दिल में प्यार के पर्दे खोले थे। कहा था, मुझे इन सख्तियों में वही सुख मिलता है जो लैला को मिला था। अब फिक्र क्या? दिल जिसका था, उसे सौंप चुकी। अब तो उस खाली जगह पर पत्थर रख लिया है… जिसका जी चाहे चोट करे।"

कमरे में चारों तरफ से वाह-वाह के झोंके आने लगे। मिस्टर खड़-वाला को तो जज़्बाती हिस्टीरिया का दौरा ही उमड़ आया। सबके बाद

तक झूमकर वाह-वाह करते रहे। फिर एक गहरी सांस डालकर आंखें चढ़ा लीं। मिस्टर मरूवा, मिस्टर भडकमकर, मिस्टर फ्रांसिस, मिसेज कँवरसाइन (कँवरसाइडोन), जोशी, मिसेज गुलशन मरूवा··· सभी मिस्टर अहमद को भूलकर मिसेज अहमद के शायराना दिल की झोली के भिखारी बन गए।

मिसेज अहमद ने मौके की रानी का सिहासन बड़ी संजीदगी के साथ संभाला। उनके दुख-भरे चेहरे पर हल्की मुस्कान इस तरह खिली जैसे घटाटोप बदली के भीतर झांक जानेवाली बिजली फबती है। बेसंवारे हुए बालों पर मुलायमियत से हाथ फेरकर कहा, "क्या सुनाऊं, मेरा सुनने वाला तो आलूस की वर्फीली चोटियों में सो रहा है।"

मिस्टर रबड़वाला की मर्द सांस कमरे में गूंज उठी। मिसेज अहमद ने हमदर्द निगाहों से उनकी ओर देख लिया। नजरें मिलाकर मिस्टर रबड़वाला का गमगीन सिर नीचा हो रहा, और मिसेज अहमद ने कहना शुरू किया, "यों हौसला नहीं, मौका भी नहीं, मगर आप इसरार करते हैं तो एक कविता सुनाती हूं। यह मेरे अहमद को बहुत पसन्द थी।"

सुननेवालों ने कविता की अगवानी में सूनेपन के फूल बिखेर दिए। मिस सोमा कापड़िया फौरन ही पियानो के स्टूल की ओर लपकी। मिसेज अहमद ने यों घबराकर सावधान किया जैसे कि मिस सोमा छत से नीचे ही टपकने जा रही हों। बोली, "ना! ना सखी! आज की रात साज न छेड़···मेरे अहमद की रूह तरज जाएगी।"

मिसेज अहमद के दर्द की गहराइयों से निकली हुई इस बात पर वाह-वाह के छींटे उड़े, हाय-हाय की बौछारें पड़ीं, और मिसेज अहमद की कविता चमकी :

"ओ मेरे प्यार के गीत!—
ओ मेरे मन के गीत!
चुप हो···
खामोश ज़रा···देख तो

कौन आता है ।
विरह का राक्षस खूंख्वार
बना धाता है ।
ओ मेरे मीत, तुझे दिल में
छिपा लूं अपने ।
कि इसमें पलते है तेरे ही
सुखों के सपने ।
चुप हो ढीठ, मेरे गीत,
ज़रा तो चुप हो ।
दिल से दर्द गया जीत,
ज़रा तो चुप हो ।
अरे सुख के दिन गए बीत,
ज़रा तो चुप हो ।
प्रीत में हो रही अनरीत,
ज़रा तो चुप हो ।
तू ये कहता है कि
प्यारे का पयाम आता है ।
अरे दिल, सब्र कर,
बस सुबहो शाम आता नहीं
यह जानता अंजामे मुहब्बत की तरह—
विरह का राक्षस खूंख्वार
बना धाता है ।
चुप हो! खामोश ज़रा···देख
तो कौन आता है !
ओ मेरे प्यार के गीत !
ओ मेरे मन के मीत !
टैगोर, टी० एस० ईलियट, इकबाल, बायरन, कीट्स, शेली, मिल्टन

तक सब कवियों की फेहरिस्त खत्म हो गई, मगर मिसेज अहमद की कविता की तारीफ खत्म न हो सकी। मिसेज कैन्यरआइडीन ने तो मोपासां, वैनगाग और पिकासो की कविताओं की तरह इस कविता को भी सदा याद रखने लायक चीज करार दे दिया। मिस्टर रवड़वाला ने एतराज उठाया कि इन तीनों नामों में से एक भी कवि नहीं। इसपर मिसेज कैन्यरआइडीन बिगड़ गईं। उन्होंने 'कोन्तीनेन्तुस कुल्चर' पर एक गर्म लेक्चर दे डाला, जिसके हिसाब से लेडीज की कोई बात काटना शराफत का बड़े से बड़ा जुर्म है। मिस सोमा कापड़िया पिछले साल ही यूरोप की सैर करके लौटी हैं। उन्होंने मिसेज कैन्यरआइडीन की 'कोन्तीनेन्तल कुल्चर' की जानकारी का मजाक उड़ाया। इसपर मिसेज कैन्यरआइडीन का भमक उठना लाजमी था। और चूंकि इधर कई महीनों में मिसेज कैन्यरआइडीन की धमक का मिस्टर भड़कमकर पर खास असर पड़ता है, लिहाजा उनका भड़क उठना भी लाजमी था। मिस सोमा की तरफ से बहस करनेवाला कोई वहां मौजूद न था, मगर चूंकि बड़े बाप की बेटी है इसलिए वह खुद अपने तजुर्बे के बल पर वकालत करने लगी। मिसेज भरूचा ने जरूर उनकी हर बात पर जोरदार 'हां' की शह दी, और वह भी इस तरह कि जैसे वह खुद भी 'कुन्तीनेन्त' की सैर कर आई हों। मिस्टर भरूचा ऐसी कुल्चरल लड़ाइयों के वक्त हमेशा से अपनी 'साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल सप्लाइज लिमिटेड' के सिलसिले में फुलावे भिड़ाने के आदी हैं, इस वक्त भी उसीमें मसरूफ हो गए। मिस्टर फ्रांसिस जोशी को अपनी चमकदार मिसेज की तरफदारी करने के बजाय उस पचपनसाला की झपकियों में ज्यादा रस मिलता है। वे उसी रस में डुबकियां लेने लगे।

मिसेज अहमद इस वक्त मातम के मूड में थी। मिस्टर अहमद की इस अचानक मौत ने उनके दिल में एक जगह खाली कर दी थी। उसमें सूनापन और आने वाले कल की चिन्ता भर रही थी। उन्हें अहमद की माली हालत का सही-सही अंदाज तो शादी के इन आठ महीनों में भी न हो सका था, मगर वह इतना जरूर समझ रही थी कि बैंक में दस-पांच

हज़ार से ज़्यादा रकम न होगी। एक विज़नेस फर्म के मैनेजर और छोटे पत्तीदार के पास आखिरकार हाथी-घोड़े तो बंध नहीं सकते। फिर उनकी रोज़मर्राह की ज़िंदगी काफी खर्चीली थी। इन्हीं सब उखड़े-से खयालों को लेकर वह मन ही मन अपनी थकान से जूझ रही थीं। मेहमानों पर गुस्सा आ रहा था जो उन्हें अकेली छोड़कर आपस में जूझ रहे थे। मिस्टर रबड़-वाला की तरफ ध्यान गया। वे हमदर्द निगाहों से उन्हें ताक रहे थे।

मिस्टर रबड़वाला को मिसेज़ अहमद के दुख से दुख हो रहा था। वह उस ज़माने से मिसेज़ अहमद की कद्र करते हैं जब वह मिसेज़ वर्मा थीं। उनके और अहमद के रोमांस की गर्म चर्चा के दिनों में उन्हें रह-रहकर अहमद पर एक खामोश किस्म का रश्क होता था। अपने ऊपर पछतावा भी आता था कि सोसायटी की किसी प्रेम-कहानी के हीरो न बन सके। अपनी किस्मत पर भी अफसोस होता था जिसने उन्हें अहमद की तरह पुरमज़ाक, हाज़िर जवाब, चुस्त, चंचल और लेडी-किलर न बनाया। वह अहमद की नकल करने की भरसक कोशिश भी किया करते थे। और जब मिसेज़ अहमद की अहमद के साथ शादी हो गई तो वह मन ही मन अपनी 'हीरोइन' के और भी नज़दीक सिमट आए थे। इस वक्त भी जब उन्होंने मिसेज़ अहमद को बहस में हिस्सा लेते न देख खामोश और उदास देखा तो खुद को भी कमरे की कुल्चरल फिज़ा से समेट लिया। सिर झुकाकर बैठे रहे। बीच-बीच में उदास आंखें उठाकर मिसेज़ अहमद को देख लिया करते थे। जब नज़रें मिल जाती थीं तो उनको राहत होती थी। और नज़रें मिल ही जाती थीं—खयाल आ ही जाता था।

कमरे के कुल्चर में जब कोन्तीनेन्त के मुकाबले में अपने 'कुंत्री' की जहा-लत फैली, मिस सोमा कापड़िया ने जब पुरानी कारतूसों से नये कुल्चर का निशाना बेधने की कोशिश करने पर हंस-हंसकर एतराज़ किए, तब मिसेज़ कैन्थरआइडीन की ऊपरी कुल्चर की खुशबू उड़ गई। वह अपनी असलियत पर आ गई।

और मिसेज़ अहमद को गश आ गया, *"अहमद! माई पुअर अह-*

मद ! मैं तुम्हारे बिना कैसे जी सकूँगी···।" बेहोशी में ही वह रह-रहकर बडबडाने लगी, दर्द से घुटने लगी।

मिस्टर रवड़वाला फिर लपककर मिसेज़ अहमद के सोफे पर पहुँच गए। उनके सिर और कंधे पर दोनों हाथ रखकर नौकरों को यू-डी-कोलोन लाने के लिए पुकारने लगे।

सबको मिस्टर अहमद की मौत पर नये सिरे से अफसोस होने लगा।

मिस्टर भड़कमकर ने भरी आवाज में कहा, "प्रेमी की मृत्यु प्रेमिका के लिए खुद अपनी मौत से भी ज्यादा तकलीफदेह होती है।···बेचारी विमला ! इन अवर मराठी दे से कि अल्लाची गाय।"

मिसेज कैम्परआइडीन मिस्टर भडकमकर की बाह से सटकर खड़ी हो गईं, फिर निसास डालकर कहा, "ओह ! बेचारी मिसेज अहमद का दुख तो देखा नहीं जाता ! "

थके हुए मन को बल देने के लिए, मिस्टर रवड़वाला के इसरार करने पर, मिसेज अहमद ने दो-तीन पेग भी ले लिए, कुछ मुंह भी जुठला लिया। खाना खाकर दोनों मिसेज अहमद की आरामगाह में आकर बैठ गए। ब्वाय मेज पर जरूरी सामान सजाकर रख गया। मिस्टर रवड़वाला ने सिगरेट एश-ट्रे के किनारे पर रखकर बोतल-गिलास सभाले। मिसेज अहमद ने धुआं छोड़ते हुए कहा, "मेरे लिए अब नहीं।"

"क्यों ?"

"नहीं···कुछ अच्छा नहीं मालूम होता। लगता है कि उम्र के दूसरे सिरे पर पहुंच गई हूं।···न उम्मीद···न अरमान···न सुख, न दुख,···दिल का हर अरमान दिल से दूर गया···कुछ धड़कनें बची हैं, जिनका किसीसे भी कुछ लगाव नहीं, बस अपना फर्ज अदा करनी है ···!"

मिसेज अहमद अपने दर्द में खो गईं। मिस्टर रवड़वाला भी कुछ देर तक खामोश रहे, फिर कहा, "अपने जी को इतना न गिराओ विमी।

धीरे-धीरे यह दुख भी भूल जाओगी। मन को कहीं न कहीं से ज़रूर शांति मिलेगी।"

"शांति !" मिसेज़ अहमद ने फिल्म देवदास के हीरो की तरह पर हंसकर कहा, "प्रेम की राह पर चलने वालों की ज़िन्दगी में शांति नहीं आया करती, रवड़वाला ! जो खुद ही अपने तन में आग लगाता है उसे तो मरकर ही शांति मिलती है।"

"तुम पागलपन की बातें कर रही हो विमी।"...मिस्टर रवड़वाला ने अचानक स्वर्गवासी अहमद की तरह ही आवाज में जोर और झटका देकर कहा, 'लो ! लो ! ...योर हैल्थ...योर प्रास्पैरिटी !"

मिसेज़ अहमद की आंखों में छेड़ की अदा चमकी, ओठों पर मुस्कान खेल गई जो दिन-भर के दर्द से अछूती थी।

मिस्टर रवड़वाला के सारे शरीर में विजली का करेंट दौड़ गया। यह दूसरा मौका था जव उन्हें अपने ऊपर घमंड हुआ। चचा के मरने पर उनके वारिसदार होकर अपनी फर्म के दफ्तर में प्रोप्राइटर की कुरसी पर जव वह पहली बार वैठे थे तव मन ही मन फूले थे; और दूसरी बार आज, अपनी डेढ़ वर्षों की तपस्या के फल को मिसेज़ अहमद की इस एक झलक में पाकर। यह झलक इसलिए और भी अनमोल थी कि उन्हें किसी औरत ने पहली बार इस तरह अपनापन देकर देखा था। सोसायटी की हर सरनाम मिस और मिसेज़ से लेकर मिसेज अहमद तक ने उन्हें महज़ ईडियट, महज़ खिलौना ही माना।

खुशी से जोश में आकर मिस्टर रवड़वाला ने एक ही सांस में अपना गिलास खत्म कर दिया। दूसरी सिगरेट जलाकर शान से एक कश खींचा, टांग फैलाई, और हीरोशाही की अदा में इतमीनान से कहने लगे, "मैंने यह देखा है कि विमी, इंसान वड़े से वड़ा दुख भी धीरे-धीरे भूल जाता है। जिंदगी जहां ठोकरें मारती है, वहां सहारा भी देती है। मैंने अपनी जिंदगी से ही यह सवक सीखा है। और मैंने यह भी जाना कि जिस चीज़ को मैंने चाहा है, उसे पाया भी है। और इसीलिए अपने ऊपर पूरा भरोसा

भी है।…"

मिस्टर रखड़वाला की बकवास लम्बी होती गई।

मिसेज़ अहमद अपनी एक अदा दिखाकर फिर खामोश हो गईं। बीच-बीच में एक-दो घूट पीकर धीरे-धीरे सिगरेट के कश खीच लेती थी। अपने खयालों में रम गई थी। उनके मन मे आज और कल की गहरी कशमकश चल रही थी। अहमद का खयाल बार-बार चुभकर इस बात का अहसास कराता था कि आने वाले कल के लिए उन्हे किसीका सहारा चाहिए। अपनी पैनी सूझ के मुताबिक वह इस नतीजे पर पहुच रही थी कि सोसायटी के अन्दर आज़ाद होकर घूमने के लिए 'मिसेज़' का टाइटिल जरूरी है। और वह यह चाहती थी कि उनका मिसेज़पन कहीं नये सिरे से इन्श्योर्ड हो जाए जिससे कि मातम का साल पूरा होने न होते वह आगे के लिए बेफिक्र हो जाएं। इस बार वह किसी ठोस पैसे वाले को अपना प्रेम देंगी। महज़ प्रेम करने के लिए ही प्रेम नही करेंगी। और भूले से भी वर्मा जैसे पति के पल्ले नहीं बधेंगी।—वर्मा तदुरुस्त खयालों के, सीधे, सधे, भले आदमी हैं, प्रोफेसर हैं। हर बात उनके लिए मानी रखती है, और हर मानी पर वह ध्यान देते हैं। हसना, बोलना मज़ाक करना, सैर-सपाटा, खेल-कूद उन्हे सब कुछ खूब पसद है, मगर अपनी या किसीकी भी जिंदगी को गेंद की तरह उछालना उन्हे कतई पसद नहीं। तमाम हसी-तमाशे के बावजूद जीवन उनके लिए एक गम्भीर चीज़ है।—मिसेज़ अहमद इस गम्भीरता का मान भी करती है, और साथ ही साथ वह उससे चिढ़ती भी हैं, नफरत करती है। ज़िन्दगी जब उनके सामने कोरा खयाल बनकर आती है तो बड़ी पवित्र, गम्भीर और सुहावनी होती है; मगर असलियत मे वह उनके लिए एक खेल है, दवने और दवाने के दाव-पेंचों का अखाड़ा है।

बचपन से उन्होंने यही जाना है। विधवा मा अच्छे खानदान की मगर मुसीबत की मारी, एक बड़े बैरिस्टर के बंगले पर रसोईदारिन का काम करती थीं। बैरिस्टर साहब बड़े शरीफ थे। अपनी रसोईदारिन से गुनाह का रिश्ता भी उन्होंने बड़ी शराफत और इज्जत के दामन को सभालकर

बांधा था। विमला को भी उन्होंने अपनी लड़की की तरह ही पढ़ाया, लिखाया, पहनाया, उढ़ाया। उनके एक लड़के और भतीजे ने अपने यहां पलने वाली रसोईदारिन की खूबसूरत और नौजवान लड़की से अपने खानदान के अहसानों की मनमानी कीमत वसूल की। इसी दबाव के 'रिऐक्शन' में उन्हें शादी की पवित्रता का अहसास हुआ था; और शादी की पवित्रता के 'रिएक्शन' में 'फ्री लव' का।

जिंदगी अब एक नये सिरे से शुरू हो रही है। इसमें उन्हें शादी की ज़रूरत है, फ्री-लव की ज़रूरत है, पैसा, हुकूमत और आराम की ज़रूरत है। अपनी तमाम ज़रूरतों को साफ-साफ समझकर वह अब एक ऐसा पति चाहती हैं जो कि आड़ भी बन जाए, और कभी उनकी मर्ज़ी के आड़े भी न आए। उनका खयाल है कि रवड़वाला भी ऐसा पति हो सकता है। मगर वह जल्दबाज़ी नहीं करना चाहतीं। अभी तो उनके पास अहमद के मातम का पूरा एक साल पड़ा है। तब तक वह परख लेंगी। मगर तब तक के लिए पैसों और आराम की कमी न आए, इसलिए फिलहाल चारा भी डालती चलेंगी। रवड़वाला बुद्धू है, मगर घमंडी है, इसलिए उसे दुत्कार-दुत्कार कर अपने पास बुलाएंगी।

इन गहरी स्कीमों में डूबते-उतराते हुए भी मिसेज़ अहमद को यह खयाल बना रहा कि अहमद के लिए उनके दिल में कहीं टीस भी बराबर ही उठ रही है।···प्यारा आदमी था, उन्हें प्यार भी करता था। वो भी प्यार करती थीं। उस प्यार में एक तेज़ी थी, सचाई भी थी जो अब बिखर रही है। यह भी मिसेज़ अहमद को अच्छा नहीं लगता। पूरी ज़िद के साथ वह उस सचाई को बटोरना चाहती हैं; अपने प्यार की तड़प को लेकर घुटना चाहती हैं, उसमें रमना चाहती हैं। "···अहमद! माई पुअर अहमद! माई पुअर अहमद!!···"

घुटन की मस्त कशिश में उनकी बड़बड़ाहट फूट निकली। मिस्टर रवड़वाला की जीत के नशे में सहसा यह उतार आया। बदहवास होकर वह मिसेज़ अहमद की ओर देखने लगे। उनकी गर्दन एक ओर ढली हुई

थी। बन्द आखों से गंगा-जमना बह रही थी। बाया हाथ सिगरेट को थामे सोफे के नीचे लटक रहा था, और दाहिने हाथ से वह अपने घुटने पर टिके हुए गिलास को पकड़े धीरे-धीरे बडबड़ा रही थी।

नशे के झोंक में उठकर रबडवाला उनके पास आए। उनके दोनों गालों को अपने हाथों से दाबकर उनका सिर सीधा कर उन्होंने कहा, "विमी ! विमी ! काम योर सेल्फ ! मुझसे अब तुम्हारा दुःख बर्दाश्त नहीं होता। मैं···"

"गेट आउट ! चले जाओ यहां से, मुझे अकेली छोड दो···मुझे मेरे अहमद के खयाल में खो जाने दो—मर जाने दो।"

मिसेज़ अहमद ने इतने जोर से डाटा कि मिस्टर रबडवाला का सारा नशा हिरन हो गया। वह सहम गए। लगा कि तीर बहुत दूर निकल गया। वह घबडाकर जल्दी से पीछे हटने लगे। पैर लडखडाकर मेज से अटका। वह भी उलटे, मेज भी उलटी ! बेचारे के मुह से एक हल्की-सी चीख निकल ही गई।

मिसेज़ अहमद को भी अहसास हुआ कि उनका तीर बहुत दूर निकल गया। फौरन ही खयाल से असलियत में आईं। लपककर रबड़वाला के पास आईं। उनके ऊपर झुककर, उनके चेहरे और सिर पर हाथ फेरते हुए बड़े प्यार से पूछा—

"बहुत चोट आई ! कहां लगी ?"

मिस्टर रबडवाला ने धीरे-धीरे उठकर बैठते हुए कहा, "कहीं नहीं। मुझे-मुझे माफ कर दो विमी। मैं···मैं··· जाता हूं।"

उठने से पहले ही मिसेज़ अहमद ने उन्हें अपनी बाहों में जकड़ लिया। कहने लगीं, "नहीं, मैं अब तुम्हें न जाने दूंगी। मैंने तुम्हें बडी चोट पहुंचाई है।···मगर मेरे दिल की गहराइयों को समझो रबड़वाला। दिलबर की याद में ऐसी खोई कि मैं भूल गई कि किससे क्या कह रही हूं।··· अहमद तो गए ! मेरा बस न चला। मगर क्या उनके ही जैसे अपने हमदर्द को

भी यों ही चला जाने दूंगी ? अब तो तुम्हीं मेरे अहमद हो । माई पुअर अहमद ! माई पुअर अहमद !"

कहते हुए उन्होंने मिस्टर रबड़वाला के ओठों पर अपने प्यार की छाप लगा दी—वैसे ही अचानक जैसे कि मिस्टर अहमद ने चलने वक्त उनके ओठों पर अपने प्यार की छाप छोड़ी थी ।

(१९५४ ई०)

कोल्हापुर के शालिनी सिनेटोन में ऊपर बने हुए एक-ईंटिया, टीन के छप्पर पड़े कमरों की कतार में एक कमरा मेरा भी था। यही मेरा घर और दफ्तर था। टाट के झीने पार्टीशन के दूसरी तरफ पब्लिसिटी वाले कमरे में मौलाना रहते थे। वह इन्दौर के रहने वाले और अपने प्रदेश के मशहूर कांग्रेसी लीडर थे। उस वक्त व्यक्तिगत सत्याग्रह के अपराध में जेल भुगत-कर हाल ही में छूटे थे। देश-सेवा ने बीबी-बच्चों को बेगाना बना रखा था, अब उन्होंने अपनापन निबाहने के लिए काम की तलाश में भटकने-भटकते बम्बई और बम्बई से कोल्हापुर आ गए थे। मैं भी एक फिल्म के संवाद लिखने के लिए बम्बई से गया था। अनजानों के बीच हम सगे होकर मिले। जबान, वजादारी, तकल्लुफ को मौलाना अपने बुजुर्गों की अमानत के तौर पर सहेजकर रखते थे, और बातों में बरतते थे। इन्दौर में उखड़कर तितर-बितर हुए अवध के घरानों में से एक उनका भी था। शालिनी सिनेटोन के उस टाट के पार्टीशन से, एक-ईंटिया कमरे में मेरे लिए लखनऊ आबाद हो गया।

पनघोर बरसात की रातों में जब कम्पनी के पब्लिसिटी डिपार्टमेंट की छत टपकती तब अक्सर मौलाना का बिस्तर-बोरिया भी उधर आता था। वह मेरे ही कमरे में मेज का दराज अलमारी के मुताबिक इस्तेमाल करता

मैंने रूमाल खोलकर उनके सामने रख दिया। किस्सा सुनकर बोले—"मानता हूं कि आप लखनऊ के हैं।" बातों-बातों में लखनऊ की रंगीनी किस्सागोई का फन बन गई। रोमान की तवारीख के वर्क उलटते हुए मौलाना ने एक किस्सा उठा लिया। फरमाने लगे :

"मेरे एक अज़ीज़ थे, और बड़े दोस्त भी। ज़मींदारी उनकी सीतापुर में थी, मगर रहना-सहना ज़्यादातर लखनऊ में ही होता था। आप तो खैर, शौक के फूल ही चुनते हैं, मगर वह इश्क के बाग के माली थे। उन्होंने घर फूंककर तमाशा देखा। सदा दर्दे-जिगर से ही तड़पते रहे।

"एक बार का किस्सा बतलाते थे कि उनकी मुलाकात एक लड़की से हुई, नाम था शबनम। उसमें कुछ बात थी जो इनके दिल में घर कर गई। बहुतों-से रिश्ते बने और बिगड़ गए, मगर शबनम गले का हार बन गई। बाला उमर, बड़ी-बड़ी आंखों में बाज़ार की शोखी और घर की लाज का संगम लहराता था, जिसे अज़ीज़ कभी पार न कर पाए, पुतलियों की भंवर में सदा के लिए डूब गए।

"शबनम नखास की गलियों में किसी खस्तादम कोठी के बचे-खुचे हिस्से में बदरिया ढंके पूनो के चांद-सी रहती थी, जिसने देखा वही उस गली का होकर रह गया। मां अपने शबाब के दिनों में कहीं पान की दूकान चलाती थी। एक नवाब की नज़रे-इनायत हो गई, खानगी बनकर लखनऊ चली आई। जब तक नवाब रहे, दौरदौरा रहा। उनके बाद घरवालों ने उसको और शबनम कोसब कुछ छीनकर, रोटी-कपड़ों से भी मुहताज कर, घर से निकाल दिया। रियासत और इज़्ज़त के साथ ज़िन्दगी बसर करने की आदत ने उन्हें बाज़ार में कोठा लेने से तो रोक दिया, मगर पेशा करने पर मजबूर कर दिया। दलाल के सहारे खानगी कारबार चलने लगा। उम्र पाकर शबनम ने मां को सहारा दिया। उनकी उम्मीदों के नये सपने बंधने लगे, मगर मौत ने वे सपने पूरे न होने दिए। शबनम पड़ोस के मकान में बड़ी बी की सरपरस्ती में आकर बस गई। बुद्धन दलाल शौकीनों और रईसज़ादों में घूम-घूमकर उसके हाथ के कढ़े तकिये के गिलाफ, मेज़पोश

वगैरह बेचकर उसकी, उसके बड़े खानदान और ऐशोइशरत की कहानी के बड़े-बड़े दीवाने बांधता, 'कहां तो ये हालत थी कि जिसको अपने हाथ से चुटकी उठाकर दे दी उसका घर पल गया, और आज वही ताजे गुलाब के फूल-सी मासूम बच्ची अपना पेट पालने के लिए मेहनत-मशक्कत करती है।'

'मेरे अज़ीज़ से शबनम की मुलाकात तब हुई जब वह बड़ी बी के यहां रहने लगी थी। बड़ी बी की कमर और गर्दन में खम खाई हुई देह, जिसकी गोरी चमड़ी पर अनगिनत झुर्रियों से उनकी गई-गुज़री जवानी की रूह झांकती, उस घर के टूटे-फूटे कोठे-दालानों में डाली से गिरे चमेली के फूल की तरह धीरे-धीरे इधर-उधर डोलती हुई बड़ी भली मालूम होती थी। हर किसीके दिल में उनको देखकर इज़्ज़त पैदा होती थी। ताज़ा बुझी हुई शमा के गुल में मरी चमक के मानिन्द बड़ी बी की कांपती हुई आवाज़ का हर पर्दा एक पर्दानशीन दर्द की झलक बनकर सुननेवालों के कानों में समाता। बड़ी बी अक्सर शबनम से कहा करती, 'ज़िन्दगी बसेर बेटा, लेना, खूब खेलना —मगर देखना कि खेलते-खेलते गम के पहलू में किसीके दिल का चैन न खो जाए। खुदा न करे किसीको रातें नींद की दुश्मन बन जाएं। जज़्बात की सफेद चादर पर पांव पोंछकर पांव रखना बिटिया, कहीं दाग न लग जाए।'

"तब कोई उनकी माड़े से धुंधली पुतलियों को गौर से देखता, तपती हुई बालू पर तड़पती हुई मछलियां जिनपर आंसू भी नहीं पिघलते। हर बहार खिज़ां बनकर बड़ी बी की झुर्रियों-पड़ी धुंधली आंखों में समा गई थी। चेहरा बर्फ की तरह सर्द,सफेद। तोड़ने पर बर्फ के अन्दर से भी धुआं निकलता है, लेकिन बड़ी बी का नाता उससे भी टूट चुका था। हर तरह से टूट चुकी थी। उस ज़माने की क्यारी के टूटे हुए गुलाब के फूल-सी मुर्झा चुकी थी जिसकी खुशबू अभी तक लखनऊ की मिट्टी में बसी हुई है।"

मौलाना रुके। मैंने पान पेश किए। दास्तान के नशे में हम दोनों ही झूम रहे थे। पल-भर के लिए भी खुमार के तौर पर डालिनी तिनेटोन के उस हाट के पार्टीशन लगे एक-ईटिया कमरे को महसूस करना मुझे अच्छा

नहीं लगा। नानी-दादी की कहानियां सुनते वक्त जैसे हुंकारी भरते हैं, मैंने भी कहा, "हां मौलाना, फिर ?"

मौलाना ने तकिये का सहारा लिया। पान की गिलौरी मुंह में एक-दो बार इधर-उधर फेरकर गाल में दबाई और कहने लगे :

"हांसाहब, तो एक दिन की बात है कि मेरे अज़ीज़ जब पहुंचे, तो पता लगा कि शबनम पास-पड़ोस वालियों के साथ शाहमीना की दरगाह पर चादर चढ़ाने गई है। वह उसका इन्तजार करते हुए कुछ देर के लिए बड़ी बी के पास बैठ गए। नवाबी के रंगीन आलम से लेकर आज के खुदगर्ज़ ज़माने तक उन्होंने बहुत कुछ देखा-सुना था, कठिन आंचों में तपी थी। ज़िन्दगी के नये-पुराने तजुर्बों का भंडार लुटाते हुए बड़ी बी एक दास्तान सुनाने लगीं। उनकी कांपती हुई आवाज़ धीरे-धीरे बयान कर चली :

" ईद का दिन था, बरस-भर का त्योहार। शाही महलों में बेगमातसे मिलने के लिए शहर के बड़े-बड़े अमीरो-उमरा और अच्छे घरों की बहू-बेटियां भारी-भारी जोड़े पहनकर डोले-पालकियों पर चढ़ी चली जा रही थीं। महल के फाटक पर पालकियों का तांता बंधा हुआ था। एक खाली होती है सरी आगे बढ़ती है। कोई अन्दर से मिलकर लौटती है, उसके पालकी के कहारों की पुकार पड़ रही है। चारों तरफ 'हटो-बचो' की धूम मची हुई है। दूर-दूर तक डोले-पालकियां महलों में जाने के इन्तज़ार में खड़ी हैं। पीछे के कहार आगेवालों को हांक मार रहे हैं कि जल्दी करो, जल्दी करो।

" उसी तरफ से बादशाह के एक चचाज़ाद भाई गुज़रे। घोड़े पर सवार चले जा रहे थे कि एकाएक नज़रें अटक गईं। एक डोले के परदे से किसी गुलबदन की जरदोज़ी का काम की हुई लहरियोंदार ओढ़नी का कोना बाहर लटक रहा था। ओढ़ने वाली कितनी अल्हड़ होगी—सोचते ही नवाब का जी लहरा उठा। घोड़े से उतरे, डोले केनज़दीक आए, ओढ़नी ऊंची उठा दी। डोलेवाली ने बाहर किसीका हाथ महसूस किया, तो परदे के नीचे से चार गोरी-चिट्टी हिनाई उंगलियां सहमकर बाहर निकल पड़ीं।

ओढ़नी अन्दर चली गई, साथ नवाब साहब का दिल भी।

"डोलीवाली के लिए तो आई बात पार भी हो गई, मगर नवाब साहब सौतलपाटी ले पड़ गए। दिल में ऐसी जली कि ईद होली-सी दहक उठी। उन चार नाज़ुक उंगलियों वाली का न देखा हुआ भोला-सा मुखड़ा रात के सितारों में तरह-तरह से नक्श हो गया। अनजान ने जान ले ली। जिसने देखा मुह से हाय निकली, महलों में कुहराम मच गया, नवाब साहब दिन-ब-दिन सूखकर काटा होते जा रहे थे। लोग घर-घर के पूछने कि क्या हुआ, कुछ तो कहिए कि बात क्या है? बेचारे नवाब फकत आखों से नीर बहाकर निसास ढाल देते। कहते भी क्या? जिसके माशूक का पता न हो उसके दिल का ठिकाना भी भला क्या पूछिए।

"नवाब साहब के हम-प्याला हम-नवाला थे एक मिर्ज़ा साहब। न माने, एक दिन कसम खाकर इसपर तुल गए कि या तो गम में शरीक होंगे, वरना यहीं पर जान दे देंगे। वह दोस्त क्या, जो दोस्त के काम न आए?

"बहुत कहने-सुनने पर नवाब साहब ने अपने दिल की बात कही और दोस्त के गले से लिपटकर रोते हुए बोले कि 'मिर्ज़ा, भला इस पागलपन का भी कोई इलाज है? मगर मैं क्या करूं? ऐसी घड़ी का रोग लगा है कि जान लेकर ही जाएगा।'

"मिर्ज़ा बोले, 'आप ये सोग-बिरोग छोड़िए, जैसे रहते थे रहिए। मैं वादा करता हू, खुदा ने चाहा तो महीने-भर के अन्दर ही जिसने आपको रुलाया है वही पहलू में हंसाने भी आ जाएगा।'"

मौलाना रुके, कहा, "पंडित जी, चाय पीजिएगा?"

मैंने कहा, "किस्सा पूरा कीजिए, मौलाना। अभी तो मेरी जान भी नवाब के साथ ही वादे की सूली पर टगी हुई है।" मौलाना मुस्कराए, फिर बधे खयाल के नशे में उनकी आखें लहरा उठीं। कहना शुरू किया, "खैर, जनाब, मिर्ज़ा साहब वादा करके तो चले आए, मगर यह समझ में न आया कि आखिर इस गुत्थी को सुलझाएं क्योंकर? उस दिन सैकड़ों डोलें महलों

में आए थे। कैसे पता चले कि उनमें लहरियों वाली कौन थी? शहर में जितने कहारों के अड्डे थे, एक-एक करके सब छान मारे, चारों तरफ कुटनियां छोड़ीं, हर अमीर-उमरा की महरियों, बांदियों को मिलाया—सब जतन करके हार गए। किसी तरह भी पता न चला कि लहरियोंदार जरदोजी की ओढ़नी ओढ़कर कौन चोर महलों में घुसा था, जो नवाब साहब का दिल ले आया। मिर्जा मायूस हो गए। वादे की मुहलत पूरी होने में बस दो ही एक दिन और बचे थे। यही सोचें कि अगर बात न निभा सका तो दोस्त को क्या मुंह दिखलाऊंगा। और खुदा न करे कि नवाब यह सदमा बर्दाश्त न कर सकें, उन्हें कुछ हो गया, तो फिर मैं ही जीकर क्या करूंगा···जी में ठान लिया कि बस आज रात खुदकुशी कर लेंगे।

"दिन में घर का एक-एक कोना हसरत-भरी निगाहों से देखा। बेगम के साथ चौपड़ खेली, मीठी बातें कीं, घर के नौकरों-चाकरों को बात-बात पर बख्शीशें दीं कि मरने के बाद याद करें। शाम को छत पर चढ़े कि बस अब आखिरी दिन है, दो घड़ी यहां बैठ लें···जाने कितनी चांदनी रातें यहां बेगम के साथ प्यार की बातों में गुजारी हैं।

"ऊपर पहुंचते ही मिर्जा की आंखें चमक उठीं, कलेजा धक् से रह गया। अपने और पड़ोसी के बीच की दीवाल पर कुछ कपड़े फैले हुए देखे, उनमें जरदोजी की काम की हुई एक लहरियोंदार ओढ़नी भी थी।

"मिर्जा उल्टे पांव नीचे लौटे। बेगम से पूछा, 'ऊपर कपड़े किसके सूख रहे हैं?'

"'मेरे।' बेगम ने सादा-सा जवाब दे दिया।

"मिर्जा का चेहरा मुर्दों की तरह सफेद हो गया। जी को कड़ाकर फिर पूछा, 'ईद के दिन महलों में क्या यही दुपट्टा ओढ़कर गई थीं?'

"'हां, क्यों?' बेगम की परेशानी बढ़ रही थी, मियां क्यों पूछ रहे हैं।

"मिर्जा साहब ने और भी जी को कड़ाकर पूछा 'उस दिन कोई खास बात हुई थी?'

"बेगम उलझन में पड़ी। फिर सोचकर कहा, 'और तो कुछ नहीं, मुझसे बेपर्दगी हो गई थी, दुपट्टा बाहर लटक रहा था। कोई शरीफज़ादे बेचारे…'

"बात पूरी भी न हो पाई थी कि मिर्ज़ा को गश आ गया। इतनी देर में बेगम पहेलियों के जाल में तड़प-तड़पकर घुट गई। होश आने पर मिर्ज़ा ने बेगम को सब हाल सुनाया, कहा, 'अब तुम मेरे किसी काम की न रही। आज ही तलाक दूंगा, और आज रात को ही तुम्हें नवाब साहब के महलों में जाना होगा।'

"*बेगम ने लाख सिर पटका, बहुत रोई, कहा, 'यह तुम किस कुसूर* की सज़ा दे रही हो मुझे? ऐसा मैंने क्या गुनाह किया है?'

"मिर्ज़ा साहब का कलेजा फटने लगा। बड़ी मुश्किल से अपने ऊपर काबू पाया, बोले, 'दोस्ती का हक अदा कर रहा हूं बेगम। तुम अगर ज़रा भी मुझे प्यार करती हो तो मेरी लाज निभाना।'

"यह कहकर तीन बार तलाक-तलाक कहा और नवाब साहब के यहां चल दिए। जाकर हंसते हुए बोले, 'भाई जान, मुंह मीठा कराइए आपकी मुराद बर आई।'

"नवाब ने गले से लगा लिया।

"*उसी रात डोले के साथ मिर्ज़ा नवाब साहब के यहां गए। बेगम वही* लहरियोंदार ओढ़नी ओढ़कर आई थी। डोला अन्दर पहुंचा दिया गया। नवाब की बाछें खिली जा रही थीं। बार-बार पागल की तरह मिर्ज़ा को गले लगाकर यही कहते कि तुम्हारे एहसान का बदला किसी कीमत से न चुका सकूंगा।"

"मिर्ज़ा हंसकर बोले, 'पहले अन्दर जाकर अपना जी तो भर लीजिए। मैंने पहचानने में गलती तो नहीं की? फिर मैं इजाज़त लूं और आप अपना दिल शाद फरमाएं।'

"नवाब साहब अन्दर तशरीफ ले गए। ओढ़नी पहचानी। ओढ़नी वाली पर सौ जान से कुर्बान हुए। उनके तसव्वुर से कई *लाख गुना ज्यादा* वह हसीन

थी। मगर उनके जानो-ईमान की मलका फूलों की सेज पर बैठी चौधार आंसू बहा रही थी। बड़ी-बड़ी कसमें दिलाने के बाद राज खुला। नवाब ज्यों के त्यों बैठे रह गए। दोस्त ने क्या देकर दोस्ती का हक अदा किया है। एक वह है, और एक···

"नवाब साहब बाहर चले आए। मिर्ज़ा ने पूछा, 'कहिए, पहचाना ?'

"हां मिर्ज़ा, पहचाना। तुम भला गलती कर सकते हो ?···मगर मिर्ज़ा, मुझे वहां जाते डर लगता है।'

"डर ? और आपको ? क्या फरमाते हैं नवाब साहब ?' मिर्ज़ा ने ताज्जुब के साथ कहा।

"'सही अर्ज करता हूं, मिर्ज़ा। मैं जब-जब सेज की तरफ बढ़ता हूं अंधेरे में रोशनदान से एक हाथ निकलकर मुझे मना करता है। मैं डरकर कांप जाता हूं, मिर्ज़ा।'

"मुआफी बख्शें, मगर मुझे आपकी बात पर यकीन नहीं आता नवाब साहब।' मिर्ज़ा सोच में पड़कर बोले।

"'तुम खुद ऊपर जाकर देख लो···हां, हां, बेखटके चले जाओ। भला तुमसे भी कोई पर्दा है ?'

"दोस्त से इजाज़त पाकर मिर्ज़ा अन्दर तशरीफ ले गए। बेगम से पूछा, 'तुमने बेजा ज़िद तो नहीं की ?'

"तभी रोशनदान में से एक हाथ झलका। मिर्ज़ा ने फौरन ही तलवार चला दी। हाथ कटकर अन्दर गिर पड़ा।

"मिर्ज़ा फौरन बाहर आए, मगर देखा कि नवाब साहब वहां तशरीफ नहीं रखते। शक हुआ। पीछे जाकर देखा तो उनके कटे हाथ से खून के धारे बह रहे थे।

"'यह क्या किया, नवाब साहब ?'

"नवाब तकलीफ को ज़ब्त कर मुस्कराने की कोशिश करते हुए बोले, 'इसी नापाक हाथ ने दोस्त की बीबी का पाक दामन छुआ था। इसकी यही सज़ा थी, मिर्ज़ा।'

" मिर्ज़ा देखते रह गए।"

कुछ देर के लिए हम दोनों ही चुप रहे। मौलाना ने एक ठंडी सास ली, ओठो पर दर्द की भीनी मुस्कराहट आई, बोले, "और क्या आपको यह भी बतलाना पड़ेगा कि यह कहानी बड़ी बी की आपबीती···"

"यह बात तो खैर कहानी शुरू होने ही साफ हो गई थी। किस्सा बड़ा रगीन और दिलचस्प है। दिल पर असर भी करता है···मगर यहा कोई खास अच्छा असर नही पड़ा मेरे दिल पर। सच कहूं मौलाना, कहानी मुझे किसी आशिक मिज़ाज लखनवी की रगीन कल्पना-सी मालूम देती है।"

मौलाना तब तक स्टोव के पास पहुच चुके थे। शायद उन्हे मेरी बात अखरी। मेरी ओर मुह घुमाकर बोले, "मैं तो समझता हू कि इस कहानी मे एक जबर्दस्त मारेल है, पंडित जी।"

बात काटकर मैं तुरन्त बोल उठा, "यही न कि दूसरे की बहू-बेटियों के दुपट्टे पर आशिक होना चाहिए और दोस्ती का फर्ज़ अदा करने के लिए कुटने-कुटनियों का जाल बिछाकर उन्हें भगा लाने की तरकीब करनी चाहिए?"

मौलाना अचकचाकर मेरी ओर देखने लगे। जाहिर था कि इस कहानी की बाबत उनकी बरसो की राय पर मेरी बातें कुल्हाड़ी चला रही थीं, और उससे उन्हें तकलीफ महसूस हो रही थी। मौलाना जब बहस में उलझते या नाराज़ होते तो वह नकसोरे फुलाकर दो-एक सास झटकार लेते थे, इस बार भी वैसा ही करके बोले, "पडित जी, आप दूसरे ही नुक्ते-नज़र से देख रहे है। मेरी राय मे दोस्ती की फर्ज़-अदायगी ही इस कहानी की जान है—इसका मारेल है। साथ ही उस बेचारी बड़ी बी की दु खभरी कहानी भी कलेजा मसोसकर रख देती है।"

"मुझे उसपर भी रहम नही आता, मौलाना। वाजिदअली कल्चर मे पलनेवाले मिर्ज़ा या नवाब को तो मैं नज़रअदाज़ भी कर सकता हूं। मगर जिस शहर में बेगम हज़रतमहल ने औरतो की फौज बनाकर अग्रेजो

के छक्के छुड़ाए हों, बड़ी से बड़ी आफतों से मोर्चा लिया हो, उस शहर और उस जमाने की औरत इतनी लाचार हो कि…

"भई पंडित जी, मियां, दिल बड़ा करो, यार।" मौलाना स्टोव के पास से उठ आए। उनके चेहरे से दीनता टपकी पड़ती थी। वह मिर्जा, नवाब और बड़ी बी की तरफ से दया की भीख मांग रहे थे। मेज के पास आकर खड़े होते हुए बोले, "आप तो वकील की तरह बहस करने लग जाते हैं, किब्ला। अजी, हर औरत हजरतमहल या लक्ष्मीबाई नहीं बन सकती. उसी तरह जैसे हर मर्द महात्मा गांधी नहीं बन सकता। हमें इंसान को उसकी कमजोरियों के साथ प्यार करना चाहिए। कमजोरियां न हों, तो इन्सान इन्सान न रहे।"

मौलाना का यह नर्म, हरएक के लिए हमदर्दी से भरा हुआ दिल सौ बातों का एक जवाब बन जाया करता है। जी को यों परस जाता है कि चुप होते ही बनती है। मगर मेरे मन में बात उबल रही थी। फिर भी तैश को संवारकर ठंडे मन से मैंने जवाब दिया, "मौलाना, मैं भी कमज़ोरियों का कायल हूं। खुद भी अनजान में बहुत-सी कमज़ोरियां लाद ली हैं। मगर जैसे-जैसे समझ आती जाती है, कमज़ोरियों से लगाव रखने की नीयत भी कम होती जाती है।"

मौलाना मुस्कराए, कहा, "अजी कहां? आप तो अभी भी अंधेरी रात में सांप की केंचुल बटोरते फिरते हैं, हजरत। आखिर हैं तो आप भी नवाब साहब के ही हमवतन? और जब तक आप ऐसे करम फरमाते रहेंगे, बहुत-सी शबनम और बड़ी बी जनाब की जूतियों के तुफैल से परवरिश पाती रहेंगी। अच्छा खैर होगा, आइए चाय बन गई।"

मौलाना ने मेरी कमजोरी पर छींटा मारकर मन के उबलते हुए हक को अपनी जगह पर बिठा दिया, यह सही है, मगर इससे वह ठंडा नहीं हुआ। बात घुमड़ती रही। रह-रहकर इसीका मलाल होता कि अपनी ही बुरी आदत से मैं मन की सचाई का मुंह बन्द कर देता हूं। मुझे अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था।

चाय बनी, मेरा ध्यान उसासतों के समुद्र में गहरा डूब रहा था। मौलाना मुझे अनमना देखकर जल्द ही अपने कमरे में चले गए। मैं अपनी आदत पर गौर करता रहा, गजमुच मौलाना की मोटी मार ने मुझे आज बुरी तरह घायल कर दिया था।

और यह भी सच है कि यह आदत अब महज एक आदत रह गई है, इसमें वह मजा नहीं रही जो कभी आठों पहर आह-वाह और हाय की मौजों में लहराती हुई आंखों में रंगीन ख्वाब के नशे को दुवाला किया करती थी। अब असलियत समझ में आ गई है। फिर भी कभी काम-काज में दरवर, अवध के दरबों में पलने वाले तरह-तरह के मयानों से ऊबकर जी चाहता है कि अपने आपको मस्ती में भर लूं, थोड़ी देर के लिए बेफिक्र बन जाऊं, इतना खुद्दार हो जाऊं कि दुनिया की हर चीज मेरी परवाह करती नजर आए। वैसे फॅक्कर यही मस्त रंगीन मिज़ाजी की सूरत अख्तियार कर लेता है।

यह आदत लखनऊ की ही देन है। इसे खुशनसीबी कहूं या बदनसीबी मानूं कि मैंने अपने बचपन में उस लखनऊ की आखिरी उड़ती हुई-सी झलक देखी है जिसमें ओढ़नियों पर आशिक होने वाले कनकार रहते थे। कनकौव्वों में नोट चिपकाकर उड़ाए जाते थे। शाम को चौक के मकरे बाज़ार में चिकन के कुर्ते, दुपलिया टोपी, दुपट्टा, धोती, या छकलिया अंगरखा, नुक्केदार दुपलिया, चूड़ीदार पाजामा, पट्टेदार बाल और गुरमई आपों का मेला लगता था। उनके साथ रेशमी रूमालों से ढके हुए, मुट्ठियों में भींजते हुए हुक्का बटेर भी तशरीफ लाया करते थे। मेंहदी से रची हुई दाढ़ी वाले एक मियां जी भी लम्बा कुर्ता और ढीली मोहरी का पाजामा पहने कंधे पर दुपट्टा डालकर पतली-सी संदूकची में इत्र-फुलैल, अंजन, मजन और मिस्सी के अलावा नये फैशन के पाउडर, लेवेण्डर और 'ओटो दिन बहार' लिए पान पर हाथ लगाकर कोठेवालियों को पुकारा करते थे, "माशूकाना।"!!..." गोल दरवाजे के फाटक पर फूलों के गहने और गजरे लेकर माली अपने बेला, चमेली और मोतिये की वाहवाही

में आप ही मगन रहते थे। रईसों के यहां शादी-ब्याह के मौकों पर दिनों और हफ्तों तक नाच-गाने और भाड़ों की महफिलें हुआ करती थीं। यहां साग-सब्जी तक गा-गाकर बेची जाती थी। गली-सड़कों में हर वक्त बड़े-बड़े तानसेन राग अलापते घूमा करते थे। जगह-जगह मुशायरे होते थे, और अक्सर होते थे। कहीं तीतर लड़ाए जाते थे, कहीं बटेर और बुलबुल। हर तरफ मस्ती और बेफिक्री का आलम था।

लखनऊ उस वक्त भी अपनी पुरानी कहानियों से नई जिन्दगी में रस पा रहा था। खरबूज़े और आमों की फसल में घर के बर्तन-भांडे और बीवी के सुथने तक बेचकर ज़बान को रस देने वाले शौकीन मौजूद थे। अफीमचियों, मदकचियों, चण्डूबाज़ों और निठल्ले गपफरोशों की फौज नये ज़माने से पिट चुकी थी, मगर मोर्चा नहीं छोड़ा था। जहां महफिल हो रही हो, वहां दरवाज़ों के धक्के और गालियां खाकर, चिल्ले के जाड़े में फकत मजलिसी रईसों के कीमती गर्म कपड़ों के ध्यान में रात काटकर जानों और बाइयों के सुरीले गलों पर निछावर होनेवाले मुफलिस तमाशबीन भी देखने को मिल जाते थे। दिवाली की जमघट में कनकौव्वों की किस्मों और रंगों की मीलों लम्बी फेहरिस्त लोगों की ज़बानों पर दौड़ती थी, सवा का तीन, अद्धा, छः का दस, आड़ा-सीधा-पोनतावा, पट्टीकम ताव, कलीदार, मुक्कैशिया, झुल-झुल, बांची, दमड़ची, जमधड़, खरबूजिया, लंगोटिया, सिंघाड़िया, करौंदिया, तौकिया, मालेदार, लट्ठेदार, पट्टीदार, तिपन्ना, दुपन्ना, दुबाज, चांदतारा, मोगदार, सुराहीदार और न जाने कितने नाम और किस्में। बुढ़िया की दमड़चियां मशहूर थीं। यूसुफ हुसैन के बड़े कनकौव्वों की धूम थी। कनकौव्वबाज़ों में मुहम्मद हादी, नवाब कजन, छोटे बड़े आगा, फत्तन साहब, बाबू भसड़े, लाला बेलीमल के नाम जवाहरलाल, सुभाष बोस और सरदार पटेल की तरह मशहूर थे। उन्हीं गुरसैंद और ठाकुर नवाबअली के पेंचों के किस्से बखाने जाते थे। लाला मुन्नेलाल कागज़ी ने तो पंचखड़ी इमारत इसलिए बनवाई थी कि दिमाग अच्छा रहे, पेंच लड़ाने में सुभीता हो। लड़के लंगड़ और नंगे

लिए दौड़ा करते थे। दिल्ली और कानपुर से मैदान बदे जाते थे, बड़ी-बड़ी शर्तें लग जाती थी कि फला के हाथ मे कनकौव्वा रहा तो दूनी चौपड पड जाएगी। एक-एक पेंच पर वह शोर मचता था कि कानों के पर्दे फट जाएं। "अबे झोल है, पेटा है, अबे नीचे घर से, अबे ऊपर घर से, वो कन्नी से मारा, वो काट्टा।" दिवाली मे खिलौनों और आतशबाजी की भी धूम रहती थी। गोल दरवाजे से अकबरी दरवाज़े तक खिलौनों की नुमायश लगती थी, फलो की तश्तरिया देखिए तो मालूम पडे कि डाल के तोडे रखे है, उगली के पोर बराबर इकन्नी के सोलह पछी मिलते, सफाई ऐसी कि क्या मजाल नकल और असल मे भेद रह जाए। फिर भी बड़े बुजुर्ग कहा करते थे कि अब वह बात नही रही। लोग मेवा को याद करते जो मूर्तिया बनाने मे अपना सानी नहीं रखता था। मास्टर काशीनाथ के खिलौने की सजावट देखते ही बनती थी। फर्शी आतिशबाजी ऐसी बनती थी कि कपड़े या हाथ पर जलाइए, और बाल बाका न हो।

मुहर्रम के ताजिये, मर्सिये और इमामबाड़े की रोशनी देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। क्वार में सआदतगज की झाकिया, नौटंकिया और रहस-भरथरी की धूम मचती थी। दुर्गा टुडे ऐसी भरथरी खेलते थे कि जब मरे तो शहर-भर की मंडलिया उनकी लाश के साथ नाचती-गाती हुई गईं। सुबह की चली अर्थी रात के दो बजे गुलाल्ले के मशान पहुची। पार को इन्दर सभा मशहूर थी। खयालबाजों में लखनऊ के कलगीवाले सरनाम थे। शम्भू शायर सही के घराने के बाबा मयाराम और हाफ़िज अहमद अली जहा चग लेकर बैठ जाए, वहां तिल रखने की जगह न मिले। लखनऊ कलावन्तों का घर था। पांडो खिलौना और फज़ल हुसैन जिस महफिल मे न हों, वह महफिल वीरान, नक्कालों मे बड़े पेटवाले कदर और मुकद्दर न हो तो हसी के फव्वारे कैसे छूटें?

कही नाच होता तो लोग बिन्दा-कालका की जोड़ी को याद करते थे। तवायफें बिन्दा महराज का नाम लेकर पैरों में घुंघुरू बाधती थी।

बांको का बांकपन निकालकर गो उन्हें सीधा कर दिया गया था,

मगर नवाबों के लड़के इसके बाद [illegible] भी [illegible] घर से निकल नहीं पाते थे। उनके किस्से तो अभी दो-तीन बरस पहले लखनऊ वालों से सुने थे : "हुजूर, यह शहर तो बांकों का है। एक से एक बांका यहाँ पैदा हो गया है। दोनों-दो पट्टे की साथ लेकर बाजार में निकलते थे। अकेले-दुकेले [illegible] तक उनसे सामना करने से घबराता है।

"यहाँ एक हरनासिंह [illegible] हो गए हैं हुजूर। [illegible] थे। एक ही [illegible]। और मूंछें भी ऐसी [illegible] थे कि [illegible] बिच्छू [illegible] हैं। एक बार हुजूर बाजार में बैठे थे तो उधर से शाहजी की सवारी निकली। और शाहजी का यह हाल था [illegible], कि शहर के बड़े बड़े सेठ-साहूकार तक उनकी इज्जत करते थे—हुजूर अल्ला, आपको जीता रखे—जी हाँ। तो वह [illegible] में चले आ रहे थे, तमाम सिपाही साथ थे। बड़े रुआब से उनके हुजूर, बड़ा दबदबा था। कुछ मौज आ गई तो बैठे-बैठे मूंछों पर हाथ फेर लिया। हे है, बस कुछ न पूछिए बन्दानवाज, इस जरा बात में गोलियाँ चल गईं। शाहजी का कहने मुताबिक हुजूर मूंछों से पलटा भी न होगा कि इतने में गोली दाग दी हरनासिंह महाराज ने। वह तो कहिए किस्मत के धनी थे, बच गए, गोली ताव ताव में बचे शेर को वरना ढेर हो गए होते। लखनऊ के निशानेबाज थे, सरकार। लखनऊ के बांके थे—उस्तादों के उस्ताद—उनसे बर्दाश्त नहीं हुआ हुजूर कि कोई उनके सामने मूंछों पर ताव देके निकल जाए। यह उस जमाने के बांकों की आन थी। क्या मजाल कि उनके सामने कोई टेढ़ी-तिरछी टोपी पहनकर निकल जाए, उनके मनपसंद का जामा-जोड़ा पहन ले या उनके सामने मूंछों पर ताव फेरे। मगर शाही हुक्म के आगे हरनासिंह भी कुछ नहीं थे, हुजूर। मुश्कें कसवा दी गईं उनकी। भरे दरबार में जाने आलम ने कोतवाल से फरमाया कि क्या देखते हो, सूली पर चढ़ा दो फौरन। अल्ला आपको जीता रखे मालिक, अब जरा शाहजी का जिगरा भी फरमाइएगा। लचक के उठे, झुक के ताजीम की, और अर्ज करने लगे कि आलीजाह, मेरी तो दोनों आंखों का सवाल आ गया है। इधर देखता

हूं तो जहांपनाह का हुक्म हो चुका है, किसकी मजाल कि फौरन अमल न करे, और उधर नज़र जाती है, तो हुज़ूर मेरे पुरोहित की जान जाती है।

"बादशाह सलामत ने उन्हें छोड़ दिया हुज़ूर। ऐसे इकबाल के आदमी थे। अरे हुज़ूर, इन्हीं हरनामसिंह का किस्सा है कि पीर बुखारे में बादशा के साले रहते थे। पच भैयो के नाम से मशहूर थे। अपने यहां काप्तैन का जुआ कराते थे, बन्दानवाज़। उनका यह कायदा था कि खुद जीतें तो कोई बात नहीं, और जो कोई दूसरा जीता तो उसे जान से मार-कर रुपया छीन लेते थे। बादशा के साले थे, इसलिए उनका कोई कुछ बिगाड़ तो सकता नहीं था, जो चाहते थे कर गुज़रते थे। मगर हरनामसिंह महराज उनसे भी रुपया ऐंठ लाते थे, हुज़ूर। एक हाथ में तमचा और एक में कौड़ी लेके खेलते थे, सरकार।

"हमारे वालिद बतलाया करते थे, और कुछ तो सरकार, हमने भी देखा है कि गदर के बाद अंग्रेज़ी सल्तनत तोपों के ज़ोर से कायम तो हो गई, मगर जम न सकी। यहां बाकों का राज था। अच्छे-अच्छे रईसों के पलस्तर उखाड़ डालते थे। बाका कहलाना शान की बात समझी जाती थी, हुज़ूर। वे लोग बात की आन भी निबाहते थे हुज़ूर। जिसका नमक खाते थे उसका अदा भी करते थे। ननकऊ, मनकऊ, तनकऊ तीन भाई थे हुज़ूर,··· कायस्थ, बड़े बेडब। हाजी बेगम के यहां कुड़की आई तो उन्होंने तीनों को दरवाज़े पर बिठा दिया। लौट गए कुड़की वाले। बड़े जुल्म करते थे हुज़ूर। उस वक्त में लड़कों का खूबसूरत होना गुनाह था। आए दिन खून-खराबे होते थे शहर में। उस्ताद सुभानखां, बुद्धा, ज्वालेमस्त उस्ताद, मिट्ठी गुमानअली—हाकिम इनके नाम से घबराते थे। गरीब परवर। यह तो कहिए कि एक अंग्रेज कमिश्नर आया, हुज़ूरेआली। उन्होंने चाल चली। उन्होंने एलान करवाया कि हुकूमत लखनऊ के बाकों के करतब देखना चाहती है। इनाम और सनदें बांटी जाएंगी। सबके सब जमा हो गए हुज़ूर। और वहीं घेर लिए गए। तब से शहर में अमन

कायम हुआ है, उसका आदर करना सीखो।"

गदर का आँखों देखा हाल सुनानेवाले नाना ही अब तक मौजूद थे। आलमबाग की लड़ाई, सिकन्दरबाग, दिलकुशा, शाहनजफ, कदम-रसूल, बेगम कोठी और मूसाबाग तक की लड़ाई का हाल, राजा जयलालसिंह, मौलवी अहमद शाह, जिरैल हनुमान, बेगम हजरतमहल, और उनकी इस्लामी फौज की बहादुरी के किस्से और शहर के कत्ले-आम का आँखों देखा हाल सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। किस्से तो हम छोटी उम्र में सुने थे···काश, आज यदि याद रहता तो गदर की कुछ जिन्दा गवाहियाँ पेश कर सकता।

हमारे मुहल्ले में छोटी बच्चियों से लेकर बूढ़े नाना रहा करते थे। सौ के करीब उनकी उमर थी। घर में कोई नहीं था, घर खंडहर हो रहा था। सामने वाला बैठका और वह सामान जिससे कि कमाई करते थे, उसे छोड़कर घर की हर चीज सामान और इस मिट्टी की पुरानी गुदड़ियों में भरी पड़ी थी। सुबह शाम बड़े चाव से दुपट्टी ओढ़कर आधा फर्लांग दूर वहीं बाजीनों के बाजार में नई गुड़गुड़ी खाने के लिए अपने घर से चल देते थे, और दस-ग्यारह बजे से पहले कुम्हार की दुकान तक पहुँच नहीं पाते थे। कदम-कदम पर बच्चे, बूढ़े, जवान, सब उन्हें टोकते कि "नाना, चौक चलोगे?" और नाना वहीं पर रुककर गदर वाले को, साथ ही अंग्रेजों को मा-बहिन और बाप पुरखे की गालियाँ सुनाने लग जाते थे। घण्टों-भर एक मिनट के लिए गालियों का तांता नहीं टूटने पाता था।

गदर के बाद से नाना ने चौक का बाजार नहीं देखा था, इस डर से कि कहीं वह भी न बदल गया हो। गदर में अंग्रेजों ने उनके घर में घुसकर, उनको और उनके लड़कों को रस्सों से बाँधकर उन्हीं की आँखों के सामने घर की बहू-बेटियों को बेइज्जत किया था। बाद में बाप-बेटों को गोली मारकर, सामान लूटकर चले गए। बहू ने अपने पति के लिए साधा गया निशाना लेकर जान दी। पति फिर भी न छोड़ा गया, दूसरी गोली ने

उसकी भी जान ले ली। बड़ी लड़की ने कुए मे कूदकर जान दी, छोटी का पता नही क्या हुआ। लाला बदनसीबी से जख्मी होकर भी बच गए।

उस ज़माने के शरीफज़ादों की तरह गो मुझे भी वर्षों तक अकेले घर से बाहर निकलने का मौका नही मिला, गली-बागो मे खेलनेवाले हमउम्र लड़कों को अपने घर से ही हसरत-भरी नज़रो से देखकर रह जाता, फिर भी समय की छाप मुझपर जरूर पड़ी। बहुत-सी कहानियां बहुत-सी पहेलियां मेरे अकेलेपन का खिलौना बनकर जिन्दगी मे समा गई। इसीलिए जब उम्र पाकर आज़ादी हासिल की तो संगी-साथियों मे दोनो तरह के लोगों को चुन लिया।

नसीरुद्दीन हैदर, वाजिदअली शाह, शबनम, बड़ी बी और बांकों के शहर में, गालियां लिखी हुई दीवारो के मुहल्ले से निकलकर दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली की तरह ही बड़ी दुनिया मे भी लखनऊ की खूबियों को पहचाना। मीर तकी मीर, इन्शाह, नासिक, आतिश, अनीस, दबीर, मीर हसन, दयाशंकर नसीम, मिर्ज़ा जौक, शरसार, चकबस्त, और आरजू ने लखनऊ की सैर की, बैनी प्रवीन और विशाल के साहित्य की कच्ची कड़ियों को मजबूत बनाने वाले शिवनाथ शर्मा, पुरन्दर, मिश्रबन्धु, रूपनारायण पाण्डेय और महाकवि निराला की अटूट लगन से नया जोश लेकर रामविलाश शर्मा के साथ आगे बढा। दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी साथी मिले जो जज़बात के फूलों की पंखुड़िया नोच-नोचकर उन्हे हवा मे तितलियो की तरह उड़ाते चलते थे।

मेरी नई जवानी के साथियो मे ऐसे भी एक सिनरसीदाख्वा साहब थे जिनकी सुरमई आखों मे पुराना लखनऊ लहराया करता था। खा साहब ने गो कभी किसी उस्ताद से नाच नही सीखा था मगर जब बैठकर भाव बतलाते थे तो अच्छी-अच्छी नाचने वालियां भी पानी-पानी हो जाती थीं। फरमाया करते थे : "यहां वालों में बस एक ही ऐब है—नजर का ऐब। इसीलिए लखनऊ बदनाम है। मगर क्या ऐब है, बन्दानवाज। बकौल शायर के :

"खुदा आबाद रखे लखनऊ को फिर ग़नीमत है—
नजर कोई न कोई अच्छी सूरत आ ही जाती है।"

एक लफ्ज 'लखनऊ' में ये तमाम तसवीरें सिमटकर सदा मेरे साथ रहती हैं। आदमी अपने माहौल से जुदा होकर कुछ भी नहीं। वह जिस जगह रहता है वहां की आबो-हवा, क़ुदरत के नज़ारे, वहां का इतिहास, रीति-रिवाज, रहन-सहन सब कुछ जाने-अनजाने तौर पर उसके जीवन का अंग बन जाता है। वह उससे अपने को अलग करके रह ही नहीं सकता।

तब क्या अपनी खूबियों और खामियों के साथ जिस हद तक मेरा विकास हुआ है, वही आखिरी सीमा है? लखनऊ जैसा है, वैसा ही रहेगा? पहली शंका जितनी ही निराश करनेवाली थी, दूसरी उतनी ही आशावान साबित हुई। मोह का मारा आदमी अक्सर अपने बारे में साफ नहीं सोच पाता, दूसरे की मिसाल के आइने में खुद को देखकर असलियत को पहचानना उसके लिए आसान होता है। जब लखनऊ के विकास को लेकर सोचने लगा तो महसूस किया, लखनऊ बदला है। मेरे देखते ही देखते लखनऊ बहुत बदला है। उसने तरक्की की है। जिन गलियों में कभी सूरज की रोशनी नहीं पहुची, वहीं अब उर्दू-हिन्दी के अखबार पहुंचने लगे हैं। लोग अपने और दुनिया के गहरे नाते को नई नज़र से देखने लगे हैं। लखनऊ नवाबों से पहले मंडी के रूप में अपनी अहमियत को अब भूल चुका है, नवाबी ज़माने का रंगीन नगर भी महंगाई के बमों की मार खाकर खंडहर हो चुका है, नया लखनऊ राजनीतिक चेतना लेकर आगे बढ़ा है, यू० पी० की राजधानी होने के नाते ही उसने नई अहमियत, नई ज़िन्दगी पाई है।

यह सही है कि पुरानी परम्पराएं हर सतह की जिन्दगी पर गहरा असर डालती हैं। महाजनी सभ्यता की मिठास, मिलनसारी, दुनियादारी के व्यौहारों की कुशलता और चतुराई अवध की सामन्ती सभ्यता के संस्कारों के साथ समान भाव से शहर की तहज़ीब व तमद्दुद पर गहरा असर डालती है। विशाल मैदान, अवध की बड़ी ही उपजाऊ धरती यहां के लोग-

लुगाइयों को सहज मस्ती से भरा मन देती है। मस्ती, बेफिक्री, कल्पनाशीलता यहां का आम स्वभाव है। इसके साथ ठाकुरशाही, खुद्दारी और अक्खड़पन एक तरफ और दूसरी तरफ बनियापन की कायरता यहां की आम जनता में घुलमिल कर अनेक रूपों में झलकती है। ये दोनों रंग एक होकर कहीं झूठ, शेखीखोरी, लफ़्ज़ों की लड़ाई, बेशर्म और निहायत ही टुच्ची ज़िन्दगी के नमूने पेश करते हैं, और कहीं शराफ़त, आनबान, दरियादिली, निडर तबीयत और बुलन्दख़याली बख़शते हैं।

मुग़ल साम्राज्य की शक्तियों के बिखरने पर पतन के ज़माने में लखनऊ कस्बे से शहर बना था। कस्बा भी ऐसा जो बड़ी पुरानी मंडी होने की वजह से बेशुमार दौलत का धनी था। नवाबों ने लखनऊ के, और लखनऊ ने नवाबों के चलन में कहीं समानता पाई, कहीं दोनों ने एक-दूसरे पर असर डाला। एक नई लखनवी सभ्यता ढली। इसमें जहां कई तरह के फ़न और हुनर चमके, अवध के आला दिमाग का पता चला, वहां साथ ही साथ कनकौव्वेबाज़ी, चंडूबाज़ी, रंडीबाज़ी वग़ैरह तरह-तरह की बाज़ियों पर इन्सान के दिमाग की रचनात्मक शक्तियों की बाज़ी लगा दी गई, उनका बलिदान कर दिया गया।

हां, एक बात जो खास तौर पर वाजिदअली शाह के ज़माने में बड़े मार्के की हुई, वह यह थी कि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियां मिलकर शहर की नई चेतना दे गईं। होली, दीवाली, मुहर्रम समान रूप से नगर के त्योहार बने। मस्ती में उरूज की यह मिसाल—हिन्दू-मुस्लिम-एकता इस शहर की अनूठी खूबी है। मस्ती, दरियादिली, एकता और कला के प्रेम से इस शहर में इंसानियत की देवी का सिंगार हुआ है। इंसानियत का यही रूप इस शहर की उन्नतिशील आत्मा है। यही उसके विकास की शक्ति है।

मन को लगा कि यही स्वभाव अपने असली रूप में मेरे भी विकास की आत्मा हो सकता है—होगा—है। दिमाग की गुत्थी सुलझने के आसार नज़र आए। आदतें स्वभाव के सहारे अमरबेल-सी पलती हैं, और उसकी शक्ति लेकर खुद ही फूलने-फलने लगती हैं—खुद स्वभाव बन जाती हैं।

मगर यह नकली स्वभाव फौरन ही अपनी असलियत की थाह पा जाता है, जब कि जमाने की कद्रें बदलती हैं, शहर और समाज बदलता है, इंसान बदलता है। गलियों के दायरे में रहकर मेरी जिन्दगी कुछ और थी, मेरे खयाल कुछ और थे। ज्यों-ज्यों बाहर की दुनिया देखता गया, नये-नये प्रान्तों और नगरों की संस्कृतियों से जान-पहचान बढ़ती गई, संस्कृति की अनेकता और एकता का गहरा सम्बन्ध समझ में आता गया, मेरे विचार बदले, आदतें बदलीं, जिन्दगी बदल गई।

यह सब होते हुए भी मैं एक जगह कतई न बदल पाया। मेरा मनोरंजन और मेरे सिद्धान्त दो अलग-अलग जगहों से रस पाते रहे। इंसान की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक बराबरी को मानकर भी मैं उसपर अमल कहां कर पाता हूं। अपनी सुख-सुविधाओं के लिए दूसरों की आर्थिक दासता को कुबूल करता, और दूसरों से करवाता हूं। ये दो विरोधी बातें जब आपस में टकराती हैं, तो मैं चिड़चिड़ा उठता हूं। समझौते की भावना इसी चिड़चिड़ाहट को ठंडा करने के लिए आती है। और समझौते के माने ये हैं कि जहां हो वहीं खड़े रहे। इस बन्धन में रस कहां, और रस बगैर आनन्द कहां, जीवन कहां ?

मैं और मेरा शहर बहुत बदलकर भी, बहुत तरक्की कर लेने के बाद भी, इसी बन्धन में जकड़ा हुआ है। संस्कृति के अनेक अंगों को कमाल की हद तक कलात्मक बारीकियों से सजाकर भी हम उसका इस्तेमाल उन चंद लोगों को खुश करने के लिए करते हैं जिन्होंने अपनी दौलत के असर से समाज को बांध रखा है। हमारी कलाएं सिर्फ व्यक्ति को खुश करने में ही अपनी तमाम खूबियों को निछावर कर देती हैं। और जो कलाकार सिर्फ अपनी कला को ही रिझाता है, उसे समाज से रोटी-कपड़ा मिलना दूभर हो जाता है। इस महाजनी-सामंती सभ्यता के संस्कार अपनी खूबियों को वैसे ही लील जाते हैं, जैसे नागिन अपने बच्चों को। कसरत, कुश्ती का शौक बांकपन बन जाता है, नृत्य-संगीत, शिल्प, साहित्य, चित्रकला—सब रईस की विलासिता के ज़रखरीद गुलाम बनकर पूरे समाजी जीवन

की कद्रों पर गहरा असर डालते हैं।

मगर इन सबको बदलना होगा। क्या मैं इन्हें नहीं बदल सकता? क्या मैं अपनी कमज़ोरियों के ऊपर नहीं उठ सकता?

"I can. I can." मैं अंग्रेज़ी में बड़बड़ा उठा। मेरा निश्चय विदेशी भाषा में ढलता है। इसमें ख़ुद अपने आप पर ही ज़ाहिर हो रहा है कि मेरा निश्चय अपना नहीं—दिल का नहीं—सिर्फ दिमाग का है, विचारों का है। उफ रे इंसान की मजबूरी! उफ रे मेरी नज़र का ऐब।

इसी नज़र के ऐब ने, जिसे मैंने कभी बड़े शौक़ से दिल के काबुक में बटेर की तरह पाला था, आज मौलाना के सामने लाजवाब कर दिया। मन की बात मन ही में घुमड़कर रह गई। यह नज़र का ऐब अब महज़ एक हविस की तरह पलता है और मेरे मन से पूजा पाने वाली हज़रत-महल और लक्ष्मीबाई की मूर्ति को खंडित कर उनकी जगह शबनम और बड़ी बी पर तरस खाने के बहाने अपनी प्यास को बढ़ावा दिया करता है।

रात करवटों में ही बीती।

सुबह पांच बजे टैक्सीवाले ने रोज़ की तरह आकर दस्तक दी। उन दिनों फिल्म की शूटिंग न होने के सबब से रोज़ ही टैक्सी पर कोल्हापुर के आसपास के दृश्य देखने निकल जाना था। एक बार अलसाया, मगर फिर चल पड़ा।

सड़क और पहाड़ियां झीनी फुहारों के धुंधलके से भरी हुई थीं। ठंडी मज़ेदार हवा रात की कोरी आंखों को लोरियों-सी छू रही थी। टैक्सी की तेज़ रफ्तार की गूंज कानों में भरने लगी। सिर की झनझनाती नसों को आराम मिला, ठंडक पड़ी। झपकी आ गई।

मोटर का हार्न बजा, मेरी नींद खुल गई। इतनी-सी देर में ही बड़ा सुख मिल गया, मन में ताज़गी आ गई। आंख खुलते ही मैं सीधा टिककर बैठ गया। सामने, एक पहाड़ी नाले पर बना हुआ एक छोटा-सा पुल था।

पुल की ऊंचाई तक बढ़े हुए पेड़ों के सघन कुंज। सड़क की ऊंची सतह पर, और नीचे घाटियों में खेत और छोर तक फैली हुई हरियाली, झोपड़ियों से निकलता हुआ धुआं फुहारों से टक्कर लेकर ऊपर उठ रहा था।

मोटर का हार्न फिर बजा। दो बैलगाड़ियां खड़-खड़ करती छोटी-सी सड़क को बड़े ज़ोरों में घेरे चली आ रही थीं। मोटर के हार्न ने उन्हें बतलाया कि अभी स्वराज नहीं हुआ। गाड़ीवान ने हड़बड़ाकर 'टिख-टिख', 'हिला-हिला' की। घंटियां बड़ी मस्ती के साथ टुनटुनाकर बैलों से झूमती-झूमती हुई मेरे कानों के पास से गुज़र गईं। और गाड़ियों के निकलते ही टैक्सी कोल्हापुर के पास से होकर बहनेवाली पंचगंगा नदी के पुल पर आ गई। पंचगंगा को देखकर मुझे अपने यहां की गोमती की याद आई, मुझे बड़ी खुशी हुई। बरसात में नदी का बहाव तेज़ था!

गोमती से लखनऊ और लखनऊ से रात की बात—याद की कड़ियां जुड़ीं। दिमाग फिर मन की चिन्ता समेटने लगा।

बुझी हुई चौकोर कंदील को हाथ में लिये हुए एक आदमी और उससे एकदम ही सटकर एक औरत चली जा रही थी। मुझे अपने बच्चों की याद आ गई। मैं मुड़कर उस जोड़े को देखने लगा। सड़क पर छाया हुआ बारिश का धुंधलका और पुल के नीचे से पंचगंगा का एक कोना झलक रहा था—इस बैक-ग्राउण्ड में उस जोड़े की सिलुएट सरीखी वह छवि मुझे बड़ी ही अच्छी लगी। बरबस अपनी पत्नी की याद आ ही गई। शर्म से आंखें यों झप गईं जैसे वह मेरे पास ही बैठी हों। नज़रें दूसरी तरफ देखने लगीं। सड़क के बाईं ओर दो पेड़ों का सहारा पाकर फैलती हुई अमरबेल को देखा। दोनों पेड़ों पर बुरी तरह छाकर वह बीच में झूले की पटरी की तरह लटक रही थी। उन दरख्तों के पीछे एक झोंपड़ी, उसके सामने एक बैलगाड़ी रखी हुई, वहीं मुर्गे का एक जोड़ा पास-पास चुग रहा था :

अपने गुनाह से बचने के लिए दिमाग उपन्यास और कहानियों की कल्पना में बहने लगा। मैंने राहत महसूस की, और उसे बढ़ने दिया।

कल्पनाएं और विचार मोटर की रफ्तार के साथ ही होड़ पकड़ने लगे।

खेत के किनारे एक दो-ढाई साल का बच्चा मग्न-धड़ंग नाच रहा था। उसकी मस्ती ने रोम-रोम में आनंद की लहरें उठा दीं। तरह-तरह की तसवीरें तेजी से मन में उभरने लगीं। सोचने लगा, किसी फिल्म कहानी का हीरो पिकनिक पार्टी में ऐसी झीनी फुहारों से रसगुमा मौसम में मस्त होकर नाच रहा है। सब उसकी मस्ती पर हंस रहे हैं, हीरोइन भी हंस-हंसकर रीझ रही है। फिर ख्याल आया, नहीं, ऐसी मस्ती का इस्तेमाल किसी ड्रामाई घटना के साथ हो। मान लो, हीरोइन मर गई है, हीरो श्मशान में नाच रहा है। या मान लो किसी ऐसी सिचुएशन हो जैसे… जैसे…रोम जल रहा है, और हीरो मस्त बीन बजा रहा है। शहर के जलने का शॉट बड़ा जबर्दस्त बनेगा, पर हीरो बजाय बीन बजाने के अगर नाचे तो अच्छा होगा। कल्पनाएं टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में होती हुई न जाने कहां की कहां पहुंच गईं। हर तस्वीर सजती, मन को थोड़ी देर के लिए लुभाती। फिर उससे जी ऊब जाता, मन नई तस्वीर खोजता। तस्वीरों में से पात्र की मस्ती और बेफिक्रापन गायब हो गया, सिर्फ नृत्य का ही भाव रहा। नृत्य भी हो सकता है…"नटनम आडिना—र…" मन में दक्षिणी स्वर और आर्केस्ट्रा गूंज उठा। फिर सोचा, नहीं नटराज के बजाय कत्थक नाच हो। बड़ी महफिल में हो। उं—हूं, अकेले हीरो ही बैठा है—मैं बैठा हूं। लखनऊ में हूं। सिकन्दर नाच रही है:

हटो छेड़ो न कन्हाई।
काहे की रार मचाई॥
पकड़ो न सारी मोरी, हटो-चलो, जाओ…

गेहुए रंग की बड़ी बड़ी आंखोंवाली, कमानीदार भवें, पतले होंठ, लम्बी-नुकीली नाक, पतली कमर जैसी याकई कम देखने में आती है, वही सुडौल जिस्मवाली…मैं उसे सर सिकन्दर कहकर पुकारता था। मगर शरीर से वह जितनी ही सुन्दर थी, दिमाग से उतनी ही कुन्द। नाच अच्छा जानती थी, पर उसमें जान नहीं डाल पाती थी। उसके मुकाबिले में बड़े

मुनीर···

नाम ध्यान में आते ही रस आ गया। गोल चेहरा चेचक होते हुए भी हसीन लगती थी, छोटे-छोटे कत्थे से रंगे दांत, आगे के दो दांतों में सोने की कीलें चमकती थीं। ठोड़ी पर देहाती किस्म का फूल गुदा हुआ, गांठ-गठीली-सी, लम्बी चोटी वाली। उसमें अदव की रंगीनियत थी, गालिव पर जी-जान से फिदा···ओफ। कैसी बुरी मौत पाई बेचारी ने। सिफलिस से सारा बदन सड़ गया था, ओठ और नाक का हिस्सा तक जल गया था। हे भगवान।

पुरानी याद से रोम-रोम सिहर उठा। मन बेहद गिर गया। गहरा डूब गया। फिर झुंझलाहट पैदा हुई, कहां से कहां सोच गया। सारी मस्ती गायब हो गई। वह रस जो खेल में नाचते हुए बच्चे से पाया था, अब मेरा होकर ज़हर बन गया!

मैं थक गया। बेदम हो गया।

फिर बड़े मुनीर की आखिरी हालत की तस्वीर के साथ मौलाना की बात याद आई, "जब तक आप ऐसे करम फर्मा रहेंगे···" मगर यह कौन-सा करम है जो मैं या मेरे ही जैसे खुदगर्ज रंगीन मिज़ाज समाज के ऊपर करते हैं? यह कौन-सा ऐसा रस है जिसके पीछे एक शहर के कल्चर की सारी शक्तियां लगा दी जाती हैं? कुटनियां, गुण्डे, शोहदे, दलाल, मेरे और मेरे ही जैसे लोगों के रस की परवरिश करने के लिए न जाने कहां-कहां से औरतों, लड़कियों को भगा कर लाते हैं। उनके ऊपर बला के जोर-ज़ुल्म करते हैं, दिन-भर मज़दूरनी की तरह उनसे काम-काज करवाते हैं, हमें रिझाने की तालीम देते हैं और रात में···कभी-कभी तो एक रात ग्यारह-ग्यारह आदमी···।

बड़े मुनीर का ऐसा ही हाल हुआ। जब बीमार पड़ी तो उसके तन की कमाई खानेवाला राक्षस दल उसे छोड़कर चला गया। मैं महसूस करने लगा कि इस पेशे को बढ़ावा देने वाला मैं भी जाने-अनजाने तौर पर उसकी दर्दनाक मौत का ज़िम्मेवार हूं। ओढ़नी पर आशिक होनेवाला लखनऊ

बड़े मुनीर का हत्यारा है ?

इस नज़र से अपनी बुराई पहले कभी नहीं देखी थी। अपनी ही नज़रों में मैं मामूली गुनहगार नहीं, बल्कि हत्यारा बन गया था। मेरा सारा पढ़ना-लिखना, सोचना, मेरा आदर्श, फ़लसफ़ा सब बेकार था। मैं झूठा साबित हुआ।

बरसों बाद मेरा संगदिल पिघलकर पानी-पानी हो गया।

गाड़ी मेरी पीरघाट पहुँच चुकी थी। मोटर से उतरकर कभी पहाड़ियों के साये में मैं खड़ा हो गया। कुदरत की हर शै मुझपर फटकार बरसा रही थी। पीर की मज़ार पर मैं ने रो-रोकर कसम खाई—"अब नहीं। अब नहीं।"

(१९४९-५० ई०)

धर्म-संकट

शाम का समय था, हम लोग प्रदेश, देश और विश्व की राजनीति पर लम्बी चर्चा करने के बाद उस विषय से ऊब चुके थे। चाय बड़े मौके से आई लेकिन उस ताजगी का सुख हम ठीक तरह से उठा भी न पाए थे कि नौकर ने आकर एक सादा बंद लिफाफा मेरे हाथ में रख दिया। मैंने खोलकर देखा, सामने वाले पड़ोसी रायबहादुर गिरांज किशन (गिरिराजकृष्ण) का पत्र था, कांपते हाथों अनमिल अक्षरों और टेढ़ी पंक्तियों में लिखा था :

" माई डियर प्रताप,

" मैंने फुल्ली को आदेश दे रखा है कि मेरी मृत्यु के बाद यह पत्र तुम्हें फौरन पहुंचाया जाए। तुम मेरे अभिन्न मित्र के पुत्र हो। रमेश से अधिक सदा आज्ञाकारी रहे हो। मेरी निम्नलिखित तीन अन्तिम इच्छाओं को पूरा करना—

" (१) रमेश को तुरन्त सूचना देना। मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिलेगी जब उसके हाथों मेरे अन्तिम संस्कार होंगे। मैंने उसके साथ अन्याय किया है।

" (२) फुल्ली को मैंने पांच हजार रुपये दिए हैं और पांच-पांच सौ रुपये बाकी चारों नौकरों को। नोट मेरे तकिये में रूई की परतों के अन्दर

हैं। उसीमें वसीयत और तिजोरी की चाभी भी है। घर में किसीको यह रहस्य नहीं मालूम। तकिया अब फौरन अपने कब्जे में कर लेना। घर के भण्डार घर और सन्दूकों की चाभियां तिजोरी में हैं। रमेश के आने पर पांच पंचों के सामने उसे सौंप देना।

"(३) मैंने अपनी वसीयत मे यह शर्त रखी है कि मेरी पत्नी अगर मुझे माफ कर दे और गलत ही सही मगर जो पतिव्रत उस पर आन पडा है उसे साधकर, रमेश को छोड़कर, बाइज्जत यहां रहे तो यह मकान और दस हजार रुपया उसे दिया जाए। लेकिन यह काम उसी हालत मे होना चाहिए जब कि तुम और तुम्हारे द्वारा नियुक्त मुहल्ले के चार भले आदमी मेरी पत्नी की सच्चरित्रता के संबंध मे आश्वस्त हो जाए। वरना इस घर मे मेरे नाम से धर्मशाला कायम कर दी जाए।"

पत्र पर छः रोज पहले की तारीख पड़ी थी। मुझे यह समझने में देर न लगी कि रायबहादुर साहब गत हो चुके हैं। पत्र मैंने बड़े बाबू के सामने मेज पर रख दिया। इंजीनियर साहब और प्रोफेसर साहब भी झुककर पढ़ने लगे।

चाय बेमज़ा हो गई। हम सभी उठकर रायबहादुर साहब के यहां गए। उनका रोबीला चेहरा रोग और मानसिक चिंताओ से जर्जर होकर मृत्यु के बाद भी उनके अन्तिम दिनों के असीम कष्टों का परिचय दे रहा था। मृत रायबहादुर के चेहरे को देखते हुए उनके साथ बीते इतने वर्षों की स्मृतियां मेरे मन मे जाग उठीं।

रायबहादुर बाबू गिर्राज किशन बी० ए० उन हिन्दुस्तानियों में से थे जिन्हें तकदीर की चूक के कारण इंगलैंड मे जन्म नहीं मिल पाया था। उनका रंग भी गोरा न था बल्कि गेहुंए से काले की ओर ही अधिक झुकता हुआ था। फिर भी भरसक उन्होंने अपने-आपको अंग्रेजनुमा ही बनाए रक्खा। गरीब हिन्दुस्तानियों पर अकड़ दिखाने में वे सदा अंग्रेजों से चार जूते आगे रहे। कई हिन्दीवादियों ने उनसे शुद्ध नाम गिरिराजकृष्ण रखने को कहा मगर वे उन्हें मूर्ख बतलाकर गिर्राज ही बने रहे। रायबहादुर

गिर्राजकिशन के नाम के साथ बी० ए० जोड़ना भी नितांत आवश्यक था। सन् २३ में रायबहादुर गिर्राज अपनी बिरादरी के रायसाहब दीनानाथ की बदौलत इलाहाबाद में छोटे लाट के दफ्तर में भरती हुए थे। अपनी अंग्रेज़परस्ती और हाईक्लास खुशामद के दम पर रायबहादुर ऊंची कुर्सियों पर चढ़ बैठे। स्वराज्य होने पर आन्तरिक कष्ट भोगने के बावजूद तीन वर्षों तक स्वराजी अफसरों, नेताओं और मंत्रियों की भी बाअदब खुशामद की। गिर्राज बाबू इन लोगों के सामने जिस प्रकार खुद दुम हिलाते उसी प्रकार अपने सामने अपने मातहतों की भी हिलवाते थे। आज़ादी के बाद भी दफ्तर में अपना भला चाहने वाला कोई बाबू उनके आगे हिन्दी का एक शब्द नहीं बोल सकता था और घर के लिए भी यही मशहूर था कि रायबहादुर की भैंस तक अंग्रेज़ी में ही डकराती है। अगर कोई कसर थी तो यही कि 'लेडी गिर्राज' के वास्ते अंग्रेज़ी का करिया अक्षर भी भैंस बराबर ही था।

रायबहादुर गिर्राज पहली लड़ाई के ज़माने के मॉडर्न आदमी थे। सुबह आंख खुलते ही घंटी बजाते, सफेद कोट, पतलून और साफे से लैस फुल्ली आया का लड़का घसीटे 'छोटी हाज़िरी' लेकर हाज़िर होता। ठीक आठ बजे बड़ी हाज़िरी पर बैठते, बेटी-बेटा साथ होते, पर लेडी गिर्राज अण्डा-बिस्कुट-समाज में कभी न बैठीं। परम कट्टर छूत-पाकवाली न होते हुए भी मांस-मछली से उन्हें परहेज था। बशीरत चपरासी के बाप मुन्ने बावर्ची को हफ्ते में दो दिन ड्यूटी देनी पड़ती थी। घर के निचले हिस्से में विलायती रसोई थी। एक तरह से कहना चाहिए कि नीचे का पूरा घर ही विलायती था। वहां लेडी गिर्राज केबजाय फुल्ली आया का साम्राज्य था। फुल्ली पहले अंग्रेज़ी कोठियों में काम करती थी। अंग्रेज़ी ढंग से हिन्दुस्तानी बोलती है। अंग्रेज़ी घर के कायदे जानती है। छोटी-बड़ी हाज़िरी, लंच, डिनर, चाय, सबका समय साधती थी, इसलिए गिर्राज बाबू के बहुत मन चढ़ी थी। दफ्तर से लौटकर अपने लाइब्रेरी वाले कमरे में गिर्राज बाबू नियम से दो पेग खाने से पहले चुसकियों में गर्माया करते थे। फुल्ली उसका

इन्तज़ाम भी बखूबी कर देती थी। इसलिए आम तौर पर मज़ाक-मज़ाक में ही यह मशहूर हो गया था कि रायबहादुर साहब से कोई काम करवाने के वास्ते बजाय लेडी गिर्राज के लेडी फुल्ली की सिफारिश ज़्यादह पुरअसर होती है।

वैसे रायबहादुर गिर्राज में किसीने भी कोई ऐब की बात नहीं देखी-सुनी थी, अगर ऐब था तो यही कि वे मॉडर्न थे। चुरुट मुंह में लगाए बगैर वे बात नहीं कर पाते थे। अगर कोई हिन्दी सभा का चन्दा मांगने आए तो उससे अकड़कर कहते कि मॉडर्न ज़माने में गंवारू भाषाओं का उद्धार करना हिमाकत की बात है। धर्म के सम्बन्ध में पहले तो वे यह कहा करते थे कि यह ढोंग और पागलपन की वस्तु है, मगर बाद में उसे इंडियन कल्चर का एक सनातन रूप मानकर सहन कर जाते थे। गिर्राज साहब थोड़ा-बहुत लेन-देन का काम करते थे और उसकी बदौलत उन्होंने हैसियत भी बनाई। अच्छा मॉडर्न ढंग का मकान बनवाया। उसका नाम 'दि नाइटिंगेल' रक्खा। मोटर खरीदी। सदा दो-चार नौकर पाले। घर से लेकर दफ्तर तक घड़ी साधकर सबसे ड्यूटी करवाई। पत्नी को भी मिलने के वास्ते फुल्ली के द्वारा उनसे 'अप्वाइंटमेंट' लेना पड़ता था। लेडी इससे जल-फुक गई कि मैं फुल्ली से भी गई-बीती हो गई।

लेडी गिर्राज ने अपने फूहड़पन में उनके ऊपर एक बहुत बड़ा लांछन लगा दिया। रायबहादुर साहब सिद्धान्ततः और स्वभावतः अवैध रिश्तों से नफरत करते थे, इसलिए अपनी पत्नी के द्वारा झूठा लांछन लगाए जाने के बाद फिर उन्होंने कभी उनका मुंह न देखा। बड़ी लड़की के विवाह के अवसर पर उन्होंने कन्यादान इसलिए स्वयं न किया कि उन्हें पूजा के पटरे पर अपनी पत्नी के साथ बैठना पड़ता।

इसके बाद दो वर्ष में लेडी गिर्राज घुलघुलकर मर गईं; मगर मरी भी तो नियति के साथ षड्यन्त्र करके ठीक इनके रिटायर होने के दिन। रायबहादुर गिर्राज को बहुत शिकायत हुई; अपने बेटे-बेटी से कहा, "तुम्हारी ममी को कभी टाइम का सेंस नहीं रहा। अगर मरना ही था तो

बाद में रायसाहब चमनलाल की जन्मकुण्डली के ग्रह-नक्षत्र पलटे, बड़ा घाटा आया। दिवालिये होने की नौबत आ गई। अपनी लड़की के वास्ते कुछ रकम बचाने की नीयत से उन्होंने एक बंगला अपनी साली के नाम से खरीदा और लगभग एक लाख रुपया नकद और ज़ेवरों के रूप में बचाकर उसीके नाम से जमा करवा दिया। फिर रायसाहब दिवालिये हो गए और जिस दिन उन्हें अपनी महलनुमा कोठी सदा के लिए छोड़नी थी उस दिन उन्होंने गहरे नशे में अपनी कनपटी पर रिवाल्वर रखकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। रायसाहब की मृत्यु के बाद मौसी सयानी हो गई और रीता अनाथ।

लड़की देखने गए तो उसकी दो चोटियों में तितलियों जैसे रिबन देखकर रायबहादुर साहब के पेंशन प्राप्त जीवन में नई रस की गुलाबी आई। अनेक वर्षों का सोया हुआ मॉडर्न पत्नी का अभाव जाग उठा। लड़की रीता बातचीत में तेज़, आंखें नचाने में बाकमाल और हंसने में बिजली थी। देखकर लौटे तो रास्ते में देवीशंकर से बोले, "लड़की तो अच्छी है और—अ—दहेज का भी मुझे कोई खास लालच नहीं क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि मैं इन सब मामलों में बड़ा माडर्न हूं। खाली एक प्रपोज़ल है कि ऽ—अ—क्या नाम के, आई मीन, तुम्हारा क्या खयाल है, देवीशंकर अभी तो मैं भी शादी कर सकता हूं!"

देवीशंकर रायबहादुर को घूरने लगे। मुंह पर खुशामद से 'हां' के बजाय 'ना' भला क्योंकर कहते। मौसी के लिए इससे बढ़कर कोई शुभ संवाद न हो सकता था। अठारह वर्ष की आयु की रीता छप्पन वर्षीय रायबहादुर गिरिजकिशन की पत्नी बनी।

और इसके बाद की तमाम बातें अपने क्रम में बढ़ गईं। रीता ने प्रथम दिन से ही अपने पति से कोई सम्बन्ध न रक्खा। हठपूर्वक अपने कमरे के अन्दर बन्द रही। रायबहादुर रुपये-पैसे, गहनों और खुशामदों की बड़ी-बड़ी नुमायशें लगाकर हार गए। फिर एक दिन फुल्ली ने बतलाया कि रमेश और रीता रायबहादुर द्वारा स्थापित सम्बन्ध को भूलकर

परस्पर नया सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं। रायवहादुर आग हो गए। रमेश तब एम० ए० के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा था। पिता ने क्रोध में अंधे होकर उसपर प्रहार किया और घर से निकाल दिया। रीता तब भी उनकी न हुई।

रमेश को दो महीने बाद ही दिल्ली में कोई नौकरी मिल गई और उसके महीने-भर बाद ही रीता रायवहादुर के घर से गायब होकर दिल्ली पहुच गई। जाने से पूर्व वह एक अलबेला काम कर गई थी। मुहल्ले के पचास घरों में हर पते पर उसका लिखा पोस्टकार्ड उसके गायब होने के दूसरे ही दिन पहली डाक से पहुचा। उसमे मात्र इतना ही लिखा था :

"बाबू गिरिराजकृष्ण ने मुझे जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाया था मगर मैंने उन्हें कभी अपना पति न माना और न अपना धर्म ही दिया। विवाह से पहले मुझे यह बतलाया गया था कि मैं उनके पुत्र को ब्याही जाऊंगी। तब से मैंने उनके पुत्र को ही अपना पति माना; इस घर में आकर भी उन्हें ही भगवान की साक्षी में अपने को सौंपा और अब मैं अपने पति के पास ही जा रही हूं।"

रीता के भागने से रायवहादुर बाबू गिरिजकिशन को इतना कष्ट नहीं पहुचा था जितना कि उसके द्वारा भेजे गए इस सार्वजनिक पत्र से वे दुःखी हुए। इसके बाद रायवहादुर का जीवन बहुत बदल गया। उनमें पूजा-पाठ और आस्तिकता की भावना जागी, साथ ही अकेलापन भी हठ पकड़ गया। पिछले आठ वर्षों में वे एक दिन भी अपने घर से बाहर निकलकर कहीं न गए। लेन-देन का काम करते थे, वह भी धीरे-धीरे समाप्त कर दिया। मुहल्ले में किसीसे भी सपर्क न रक्खा। पिछले कुछ दिनों से बीमार थे मगर मुहल्ले वाले उनकी हालत देखने-पूछने भी न गए, जाते तो मिलते भी नहीं और अचानक मेरे पास अब यह पत्र आया।

हम सभी मुहल्ले वाले एकाएक यह निर्णय न कर पाए कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए। वैद्यजी और बड़े बाबू इस पक्ष में थे कि पुलिस को सूचना दे दी जाए और इस पत्र में लिखी हुई बातों का अमल भी कानून के

बाद में रायसाहब चमनलाल की जन्मकुण्डली के ग्रह-नक्षत्र पलटे, बड़ा घाटा आया। दिवालिये होने की नौबत आ गई। अपनी लड़की के वास्ते कुछ रकम बचाने की नीयत से उन्होंने एक बंगला अपनी साली के नाम से खरीदा और लगभग एक लाख रुपया नकद और ज़ेवरों के रूप में बचाकर उसीके नाम से जमा करवा दिया। फिर रायसाहब दिवालिये हो गए और जिस दिन उन्हें अपनी महलनुमा कोठी सदा के लिए छोड़नी थी उस दिन उन्होंने गहरे नशे में अपनी कनपटी पर रिवाल्वर रखकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। रायसाहब की मृत्यु के बाद मौसी सयानी हो गई और रीता अनाथ।

लड़की देखने गए तो उसकी दो चोटियों में तितलियों जैसे रिबन देखकर रायबहादुर साहब के पेंशन प्राप्त जीवन में नई रस की गुलाबी आई। अनेक वर्षों का सोया हुआ मॉडर्न पत्नी का अभाव जाग उठा। लड़की रीता बातचीत में तेज़, आंखें नचाने में बाकमाल और हंसने में बिजली थी। देखकर लौटे तो रास्ते में देवीशंकर से बोले, "लड़की तो अच्छी है और—अ—दहेज का भी मुझे कोई खास लालच नहीं क्योंकि तुम तो जानते ही हो कि मैं इन सब मामलों में बड़ा माडर्न हूं। खाली एक प्रपोज़ल है के ऽ—अ—क्या नाम के, आई मीन, तुम्हारा क्या खयाल है, देवीशंकर अभी तो मैं भी शादी कर सकता हूं!"

देवीशंकर रायबहादुर को घूरने लगे। मुंह पर खुशामद से 'हां' के बजाय 'ना' भला क्योंकर कहते। मौसी के लिए इससे बढ़कर कोई शुभ संवाद न हो सकता था। अठारह वर्ष की आयु की रीता छप्पन वर्षीय रायबहादुर गिर्राजकिशन की पत्नी बनी।

और इसके बाद की तमाम बातें अपने क्रम में बढ़ गईं। रीता ने प्रथम दिन से ही अपने पति से कोई सम्बन्ध न रक्खा। हठपूर्वक अपने कमरे के अन्दर बन्द रही। रायबहादुर रुपये-पैसे, गहनों और खुशामदों की बड़ी-बड़ी नुमायशें लगाकर हार गए। फिर एक दिन फुल्ली ने बतलाया कि रमेश और रीता रायबहादुर द्वारा स्थापित सम्बन्ध को भूलकर

परस्पर नया सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं। रायबहादुर आग हो गए। रमेश तब एम॰ ए॰ के अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा था। पिता ने क्रोध में अंधे होकर उसपर प्रहार किया और घर से निकाल दिया। रीता तब भी उनकी न हुई।

रमेश को दो महीने बाद ही दिल्ली में कोई नौकरी मिल गई और उसके महीने-भर बाद ही रीता रायबहादुर के घर से गायब होकर दिल्ली पहुंच गई। जाने से पूर्व वह एक अनबेला काम कर गई थी। मुहल्ले के पचास घरों में हर पते पर उसका लिखा पोस्टकार्ड उसके गायब होने के दूसरे ही दिन पहली डाक से पहुंचा। उसमें मात्र इतना ही लिखा था :

"बाबू गिरिराजकृष्ण ने मुझे जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाया था मगर मैंने उन्हें कभी अपना पति न माना और न अपना धर्म ही दिया। विवाह से पहले मुझे यह बतलाया गया था कि मैं उनके पुत्र को ब्याही जाऊंगी। तब से मैंने उनके पुत्र को ही अपना पति माना; इस घर में आकर भी उन्हें ही भगवान की साक्षी में अपने को सौंपा और अब मैं अपने पति के पास ही जा रही हूं।"

रीता के भागने से रायबहादुर बाबू गिरीजकिशन को इतना कष्ट नहीं पहुंचा था जितना कि उसके द्वारा भेजे गए इस सार्वजनिक पत्र से वे दुःखी हुए। इसके बाद रायबहादुर का जीवन बहुत बदल गया। उनमें पूजा-पाठ और आस्तिकता की भावना जागी, साथ ही अकेलापन भी हठ पकड़ गया। पिछले आठ वर्षों में वे एक दिन भी अपने घर से बाहर निकलकर कहीं न गए। लेन-देन का काम करते थे, वह भी धीरे-धीरे समाप्त कर दिया। मुहल्ले में किसीसे भी सपर्क न रखता। पिछले कुछ दिनों से बीमार थे मगर मुहल्ले वाले उनकी हालत देखने-पूछने भी न गए, जाते तो मिलते भी नहीं और अचानक मेरे पास अब यह पत्र आया।

हम सभी मुहल्ले वाले एकाएक यह निर्णय न कर पाए कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए। वैद्यजी और बड़े बाबू इस पक्ष में थे कि पुलिस को सूचना दे दी जाए और इस पत्र में लिखी हुई बातों का अमल भी कानून के

मैंने अपने तन-मन से उन्हें सदा ससुर ही माना। धार्मिक कानून की जिस मजबूरी से उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया था उसे मैंने विधिवत् उनकी लाश को सौंप भी दिया। उनकी चूड़ियां, उनका सिंदूर उन्हें सौंपा; लेकिन मेरी चूड़ियां, मेरा सिंदूर अक्षय है।" कहकर उसने देर से अपने हाथ के नीचे दबी हुई रूमाल की पोटली को उठाया, उसमें हरी चूड़ियां थीं और एक चांदी की डिबिया थी। चूड़ियां पहनी और डिबिया खोलकर रमेश की ओर रखते हुए बोली, "जिन्होंने मेरी गोद भरी है उन्हींसे मेरी मांग भी भरी है—लीजिए, मेरी मांग भर दीजिए।"

रमेश ने रीता की मांग में सिंदूर की रेखा खींच दी। फिर रीता बोली, "घर के संबंध में मुझे केवल यही कहना है कि अगर आप पांच पंच मुझे दुश्चरित्र मानते हों तो उसे धर्मशाला बना दीजिए।"

हममें से कोई खम ठोककर एकाएक यह नहीं कह पाया कि रीता दुश्चरित्र है। मैंने अनुभव किया कि सभीके मनों को इस प्रश्न से धक्का लगा था। अपने परंपरागत धार्मिक, सामाजिक संस्कारों के कारण हम रीता को सच्चरित्र मानने से भी मन ही मन हिचकते थे। पर यों क्या कहें!

रीता हमारी हिचक पर एक बात कहकर उठ गई। उसने कहा, "मुझे रायबहादुर साहब का घर और दस हजार रुपये पाने की इच्छा नहीं। मेरे पति ने मुझे सुहाग की छाव दे रखी है। लेकिन मैं आपके सामने कसौटी रखती हूं—बोलिए, घर किसका है?"

घर को छोड़कर बाकी सब सामान के साथ रमेश, रीता और उनके बच्चे दिल्ली चले गए। हम अभी तक कोई निर्णय नहीं कर पाए। घर की चाभी मेरे पास है। वह तोले-डेढ़ तोले का लोहे का टुकड़ा इस समय मेरे मन-प्राणों का बोझ बना हुआ है।

(१६६१ ई०)

हाथों ही हो। परन्तु मैं मृत व्यक्ति की अन्तिम इच्छा पूरी करने के पक्ष में था। रायबहादुर कैसे भी रहे हों, इसी मुहल्ले के थे। कइयों को उन्होंने कभी नौकरियां भी दिलाई थीं, उपकार किया था। इंजीनियर साहब भी मेरे ही मत के थे। बाद में सभी राज़ी हो गए। मुहल्ले के एक मित्र के पास रमेश के पत्र आया करते थे। उसीसे पता लेकर तार भेजा गया जिसमें यह स्पष्ट लिख दिया था कि यदि कल प्रातःकाल तक तुम स्वयं अथवा तुम्हारा उत्तर न आएगा तो रायबहादुर की अंत्येष्टि क्रिया मुहल्ले वालों द्वारा ही पंचनामे से सम्पन्न कर दी जाएगी।

सुबह चार बजे तार का जवाब आया कि रमेश टैक्सी द्वारा दिल्ली से चल रहा है और सुबह तक पहुंच जाएगा। प्रातःकाल करीब-करीब सभी मुहल्ले वाले रायबहादुर के घर पर उपस्थित थे, तभी टैक्सी दरवाज़े पर रुकी। रमेश, रीता और तीन बच्चे उतरे। रमेश के मुंह पर तो सामाजिक लज्जा और संकोच की मलिन छाया थी, परन्तु रीता का चेहरा सतेज और निर्विकार था।

रीता के आने का संवाद पाकर अनेक स्त्रियां कौतूहलवश आ गईं। रीता ने रायबहादुर की लाश के पास अपनी चूड़ियां तोड़ीं, और मांग का सिन्दूर पोंछा। रमेश ने पिता का अंतिम संस्कार किया। स्त्रियां रीता से तरह-तरह के प्रश्न करती थीं परन्तु वह कोई उत्तर न देती थी। क्रिया-कर्म इत्यादि में रायबहादुर के सजातीय, नाते-रिश्तेदार आदि बहुत कम आए। ब्रह्मभोज में भी गरीबी से एकदम टूटे हुए ब्राह्मण ही आए। किसी प्रकार क्रियाकर्म समाप्त हुआ। रमेश के वहां से चलने का समय आया।

मैंने रायबहादुर के अंतिम पत्र के अनुसार संभ्रान्त मुहल्ले वालों के साथ रीता-रमेश को बुलाकर सबके सामने उनका वह अंतिम पत्र पढ़ा और वह तकिया जो मुहरबंद पेटी में मैंने रखवा दिया था, खुलवाया। फुल्ली और नौकरों को रायबहादुर की इच्छानुसार रुपये दे दिए गए। रायबहादुर की अंतिम मांग पर रीता का निर्णय सुनने के लिए हम सभी उत्सुक बैठे थे। रीता बोली, "मैं धर्म और ईश्वर के सम्मुख सच्चरित्र हूं।

मैंने अपने तन-मन से उन्हें सदा ससुर ही माना। धार्मिक कानून की जिस मजबूरी से उन्होंने मुझे अपनी पत्नी बनाया था उसे मैंने विधिवत् उनकी लाश को सौंप भी दिया। उनकी चूड़ियां, उनका सिंदूर उन्हें सौंपा; लेकिन मेरी चूड़ियां, मेरा सिंदूर अक्षय है।" कहकर उसने देर से अपने हाथ के नीचे दबी हुई रूमाल की पोटली को उठाया, उसमें हरी चूड़ियां थीं और एक चांदी की डिबिया थी। चूड़ियां पहनीं और डिबिया खोलकर रमेश की ओर रखते हुए बोली, "जिन्होंने मेरी गोद भरी है उन्हींसे मेरी मांग भी भरी है—लीजिए, मेरी मांग भर दीजिए।"

रमेश ने रीता की मांग में सिंदूर की रेखा खींच दी। फिर रीता बोली, "घर के संबंध में मुझे केवल यही कहना है कि अगर आप पांच पंच मुझे दुश्चरित्र मानते हों तो उसे धर्मशाला बना दीजिए।"

हममें से कोई सम ठोंककर एकाएक यह नहीं कह पाया कि रीता दुश्चरित्र है। मैंने अनुभव किया कि सभीके मनों को इस प्रश्न से धक्का लगा था। अपने परंपरागत धार्मिक, सामाजिक संस्कारों के कारण हम रीता को सच्चरित्र मानने से भी मन ही मन हिचकते थे। पर यों क्या कहें!

रीता हमारी हिचक पर एक बात कहकर उठ गई। उसने कहा, "मुझे रायबहादुर साहब का घर और दस हजार रुपये पाने की इच्छा नहीं। मेरे पति ने मुझे सुहाग की छांव दे रखी है। लेकिन मैं आपके सामने कसौटी रखती हूं—बोलिए, घर किसका है?"

घर को छोड़कर बाकी सब सामान के साथ रमेश, रीता और उनके बच्चे दिल्ली चले गए। हम अभी तक कोई निर्णय नहीं कर पाए। घर की चाभी मेरे पास है। वह तोले-डेढ़ तोले का लोहे का टुकड़ा इस समय मेरे मन-प्राणों का बोझ बना हुआ है।

(१९६१ ई०)

मोती की सात चलनियां

"ऐ छोड़ मुए बदज़ात हरामी के ! ऐ तेरी जवानी को लकवा मारे शैतान के बच्चे ! आ तो सही !" गली में इस जनानी चीख-चिल्लाहट के साथ धरपटक-धमाके की आवाज़ें आईं। गर्मी की दोपहर में कई मकानों के खिड़की-दरवाज़े खुल गए। औरतों-मर्दों और लड़कों की भीड़ झांकने लगी, बाहर आ गई। 'क्या है ? कौन है ?' शुरू हो गई।

नौजवान शायद आसपास के उजागरे से सहमकर बुर्केवाली के काबू में आ गया था। वह उसे गिराकर चढ़ बैठी। भीड़ आ जाने से नौजवान को एक हाथ से अपना मुंह छिपाने की पड़ी। उधर बुर्केवाली दोनों हाथों से उसके सिर के बाल नोचकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी, "बड़े शरीफज़ादे बनते हैं ! घर में तेरी मां-बहनें नहीं ?" तेहे में आकर बुर्केवाली ने अपना नकाब उलट लिया था। निहायत ही भद्दी शक्ल थी—होंठ के ठीक बीचों-बीच मसा, नाक चपटी सूखे आम-सा चेहरा, रंग स्याह, उम्र अधेड़। नौजवान के दाहिने हाथ पर अपने पांव मय फटी जूतियों के जमाए अपनी बकबक की रेल दौड़ाने लगी, "ऐ मैं आबिदअली के घर से निकली तो ये लौंडा वहीं से वाही-तबाही बकता मेरे पीछू-पीछू लगा। हविस का अंधा अल्ला मारा, न बुढ़िया देखे न जवनिया, लेके हाथापाई करने लगा निगोड़ा।"

"अच्छा अब छोड़ो उसे, परे हटो ! ये किसका लौंडा है ? उठ बे !" दारोगा जी उर्फ इम्तियाज अहमद रिटायर्ड सब-इंस्पेक्टर पुलिस छड़ी टेकते हुए आगे आए। बुर्केवाली तब भी न उठी। दारोगा जी ने दुबारा डांटकर कहा, "अच्छा अब उठिए भी, बड़ी पारसा बनी हैं। कहां से आई हो ? कौन हो ?"

"ऐ, मैं कोई चोर-उच्चकी, बदमाश हूं ? आबिदअली के खालूज़ाद भाई नाजिम हुसैन एड्वोकेट के यहां मुलाजिम हूं मौलवीगंज में। ये मुआ···"

"फिर वही गलत बयानी शुरू की आपने !" दारोगा जी गरजे। फिर कहा, "लड़के को कहे जाती हैं। पहले अपनी सूरत तो देखिए। माशाअल्लाह आपकी इस कमसिनी और हुस्न पर तो लंगूर का बच्चा भी न रीझेगा, इनसान का बच्चा तो आखिर समझदार होता है।"

लोगों ने ठहाका लगाया। बुर्केवाली मारे गुस्से के रुआंसी हो गई और नकाब मुंह पर डाल लिया। इससे और हंसी हुई, फब्तियां कसी गईं। बुर्केवाली अपनी जान छुड़ाकर तेजी से चली गई। दारोगा जी अपने पोपले मुंह से हंसकर बोले, "खुदा की कसम, क्या बूटा-सा कद और छप्पनछुरी-सी चाल है। लौंडा इसी चाल पे मात हो गया। अबकी से सूरत देखकर इश्क फरमाइएगा बरखुरदार ! कौन बहादुर है आप, ज़रा सूरत तो देखूं !"

लड़के हंस रहे थे, कह रहे थे, इशरत है। इशरत मियां शर्म के मारे मुंह गड़ाए धरती से चिपटे ही जा रहे थे। दो-एक खड़े हुए बुजुर्ग, घरों से दो-एक बड़ी-बूढ़ियां लानत-मलामत कर रही थीं कि बेजा बात है। वह तो कहो कि मामूली नौकरानी का मामला था, दारोगा जी ने डाट-डपटकर टाल दिया, मगर यही हरकत ये किसी शरीफज़ादी के साथ कर बैठते तो लेने के देने पड़ जाते। वगैरह-वगैरह।

दारोगा जी फिर गरजे। सबको खामोश किया। लड़कों को भगाया, फिर इशरत का [illegible] कहा, "उठ बे ! जो, खबरदार जो [illegible] इज़्ज़त का ध्यान नहीं ? चचा

रिटायर्ड प्रोफेसर, भाई एडीटर, बहन डाक्टर और तुम आज ये एक टकहाई के पीछे बदनाम हुए? बेट्टा, आशिकी खेल नहीं जिसको कि खेलें लौंडे। औरत कमर और टेंट के बूते पर झुकती है। समझा बे?" दारोगा जी ने समझाकर एक टीप जड़ी। छिपकर सुनते हुए दो लड़के हंस पड़े। इशरत गोली खाए शेर की तरह उन लड़कों को सज़ा देने के लिए झपटा। इशरत मियां इंटर का इम्तहान देके खाली बैठे थे। ये गलती कर बैठे—आखिर उम्र है, अरमान हैं, वजूहात हैं—गलती हो गई। मगर ये साले मुझसे हंसने वाले कौन होते हैं? दांत खट्टे कर दूंगा। लेकिन दारोगा जी ने कसकर बांह पकड़ ली और घर ले चले। दरवाज़े पर पहुंचकर इशरत सहमा-कुम्हलाया, कांपकर दारोगा जी से बोला, "चचाजान से कुछ न कहिएगा।"

मगर वहां तो पहले ही खबर पहुंच चुकी थी। प्रो० अख्तर हुसैन इशरत को देखकर झपटे और दारोगा जी के समझाने-बचाने के बावजूद उन्होंने उसे थप्पड़ों-घूंसों से मारते-मारते बेहाल कर दिया। उनका भी दम फूल उठा। तब दारोगा जी ने हाथ पकड़ लिया, अख्तर साहब को लाकर कुर्सी पर बिठलाया। ज़रा दम लेकर अख्तर साहब बोले, "आप समझते नहीं दारोगा जी, कल ये अपनी नादानी में किसी हिंदू लड़की को छेड़ दे तो खुदा न करे जबलपुर का दूसरा नज़ारा यहां भी देखना पड़ जाएगा। ये आदत खराब है। ज़माना खराब है।"

"जी हां, ये तो आप बजा फरमाते हैं मगर किया क्या जाए, हुजूरवाला? लौंडे-लौंडियां मां के पेट से बाद में निकलते हैं पहले इश्किया गाने याद करते हैं।"

दारोगा जी की बात सुन अख्तर साहब कड़ुवा मुंह बनाकर बोले, "लानत भेजता हूं इस ज़माने पर। हमारे आला खानदान को दाग लगा दिया इस लड़के ने। बगैर मां-बाप का बेटा है, लोग थूकेंगे तो मेरे मुंह पर थूकेंगे।"

मगर नसीबा मानो प्रोफेसर साहब से कोई पुराना बैर निकाल रहा

था। आज भतीजे ने उनके दिल को करारी ठेस पहुँचाई तो कल शायद उनकी लड़की ने ही।

डॉक्टर निगार सुल्ताना
एंड
डॉक्टर सुरेंद्र मोहन
रिक्वेस्ट दि प्लेजर ऑफ…

"अब और बाकी क्या बचा (बाकी), लड़के-लड़कियाँ खुद अपने ही नाम से अपनी शादी का इन्विटेशन कार्ड भेजने लगे। हद है।" मोहसिन मिर्जा ने अपनी मायूस नजरों को नीचे झुकाकर ठंडी चाय की प्याली को घूरकर यों देखा मानो वही अपराधी हो, फिर जैसे उसे सजा देने के लिए एक ही घूट में हलक के नीचे उतारकर कुनैन पीने जैसा मुँह बनाया।

नूर मुहम्मद साहब दोनों पाँव सोफे पर उठा के बोले, "अजी यही होना। अब आप यह तो उम्मीद कर नहीं सकते कि अख्तर साहब अपनी दुख्तर और किन्हीं लाला घसीटपरशाद पंसारीवाले के साहबजादे डा० सुरिन्दर मोहन की शादी का कार्ड खुद अपने नाम से शाया करवाते।"

"कौन मैं? मैं! अजी बस क्या कहूँ! ये कमबख्त मॉडर्न एजुकेशन ने बुजदिल बना डाला है हम लोगों को, वरना जी चाहता है कि होस्टल में जाकर खुद अपने ही हाथों अपनी लड़की को शूट कर दूँ!" अख्तर साहब उठकर चार कदम तेजी से दरवाजे की ओर गए और फिर पलटकर कमरे के एक ओर चहलकदमी करने लगे।

लगभग साठ-पैंसठ की उम्र वाले इन चार दोस्तों में खान बहादुर शकील अहमद साहब ही अब तक चुप बैठे थे। अख्तर साहब को यों परेशान हाल देखकर बोले, "अब गुस्सा थूकिए, अख्तर साहब! आखिर इससे फायदा ही क्या है? शादी तो ये होके रहेगी, हम-आप कुछ नहीं कर सकते। अब तक जहाँ इतनी शादियाँ हुईं, वहाँ एक और सही। अकबर इलाहाबादी

क्या खूब फरमा गए हैं—

'नयी तहज़ीब में दिक़्क़त
जियादह तो नहीं होती।
मज़ाहब रहते हैं क़ायम
फ़क़त ईमान जाता है।"

"हां हां, शेर तो खैर अपनी जगह पर है ही, पर मैं कहता हूं कि ईमान भी कायम रक्खा जा सकता है। आप चार भाई एक राय हो जाएं तो ये शादी रोकी जा सकती है।" जवाद भाई ने अपना पंचमजार्जनुमा दाढ़ी वाला चेहरा तमतमाकर सिर झटकाकर कहा और फिर बटुवे से किवाम की शीशी निकालने लगे।

"अजी रोकने की बात तो ये है किब्ला कि अभी लड़के या लड़की को गायब करवा दिया जाए तो सारा खेल ही खत्म हो जाए। और मैं तो कहता हूं कि अगर आप इस्लामिक कल्चर को अपहोल्ड करना चाहते हैं तो कोई न कोई सख्त स्टेप लेना ही पड़ेगा; वरना यों ही अपने सिर पर हाथ रख के कमरे में बैठे-बैठे रोया कीजिए और हिन्दू लोग हमारी लड़कियों को पार लगाते रहेंगे। एक दिन इस्लाम खत्मशुद ! हमारे बच्चों के बच्चे शिरी-महेशा-गौरी-गनेशा के भजन गाते होंगे। मस्जिदें वीरान और बुतकदों में दीवाली ! अऽहः हः हः—है हैः !" मोहसिन मियां ने अपनी सर्द आह में मानो इस्लामिक कल्चर के आखिरी रोज़ की तस्वीर नक्श कर दी। चारों दोस्त अपनी सर्द आहों में सिमटकर घुटकर बैठ गए।

आज सुबह की डाक से निगार की शादी के कार्ड हर जगह पहुंचे थे। प्रो० अख्तर हुसैन उसी वक्त से बदहवास हो रहे थे। उन्हें गहरा सदमा पहुंचा था। डा० सुरेन्द्र मोहन इसी शहर के मशहूर डाक्टर श्याम मोहन का लड़का है, दो-चार बार इस घर में भी आ चुका है, खाना खा चुका है। जिसे प्रोफेसर साहब बड़ा लायक और शरीफ मानते थे वही इस समय आस्तीन का सांप बनकर उन्हें डस गया। लड़की निगार जो छुटपन में ही मां के मर जाने के सबब से उन्हें जान से भी ज्यादा अज़ीज़ थी इस वक्त

उनकी दुश्मने-जां बन गई। अख्तर साहब को यों महसूस हो रहा था मानो सुरेन्द्र और निगार वीराने में उनकी छाती में छुरी भोंककर तपती बालू पर छोड़ गए हैं और वे जख्म से छटपटा रहे हैं, आखिरी वक्त की प्यास से तिलमिला रहे हैं। दिन में जब कार्ड मिला तब लड़का जफ़र दफ्तर जा चुका था। उन्होंने उसकी बीवी किशवर को बुलाकर पूछा, "सच-सच बतलाना बेटी, तुम लोगों को पहले से इस शादी की खबर थी?" मगर वह झूठ बोल गई। अख्तर साहब यह जान भी गए मगर बेबस थे। एक बार जी चाहा कि मेडिकल कॉलिज में जाकर निगार को सबके सामने तड़ातड़ तमाचे मारें—नालायक, बड़ी डॉक्टर बनी है। इसी दिन को देखने के लिए क्या तुझे पैदा किया था? मगर फिर न गए। मन पर नामर्दी और पस्तहिम्मती छाई रही।

शाम को अज़ीज दोस्तों की दुनिया ने उनका मुंह नोच लिया। दिनभर इसीका तो उन्हें डर रहा था। हरएक पूछ रहा है कि यह कैसी शादी है? अगर मुहब्बत सच्ची थी तो डा० सुरेन्द्र मुसलमान क्यों न बन गया। निगार ने तौहीने-मिल्लत क्यों की? दोस्तों की दुनिया ये कह रही है, बाकी दुनिया और भी न जाने क्या-क्या कहेगी। प्रोफेसर दुनिया से डर रहे थे। यों वे खुद मॉडर्न थे, पर्दे के सख्त खिलाफ थे। गो ईद-बकरीद को भी मस्जिद में कभी नमाज़ पढ़ने न जाते थे, मगर इस्लाम को मानते थे, दुनिया से डरते थे। उन्हें लग रहा था कि उनके पैरों तले ज़मीन ही नहीं रही।

डा० सुरेन्द्र मोहन के माता-पिता के पैरों तले से भी ज़मीन खिसक गई थी। यही दुनिया का सवाल डा० श्याम मोहन की कोठी में भी रंग ला रहा था। अपने बड़े बेटे डा० सुरेन्द्र को बन्द कमरे में बिठलाकर डा० श्याम मोहन गरमा रहे थे, "तुमको इंटरकास्ट मैरेज ही करनी थी तो क्या अपनी हिन्दू जाति में लड़कियां नहीं थीं? मेडिकल कालेज ही में पचासों हैं।"

"पापाजी, मुझे निगार से शादी करनी थी, पचासों से नहीं। और मेरे

सामने जाति का सवाल ही नहीं है।"

"क्यों नहीं है जाति का सवाल, मैं पूछता हूं!"

"क्यों हो, मैं आपसे पूछता हूं!"

"जबान लड़ाते हो मुझसे?"

"वह नादानी करने की उम्र अब मेरी नहीं रही।"

"जी हां, इसीलिए अब आप बड़ी नादानियां करने लगे हैं, क्यों? आपको इस बात का खयाल नहीं कि आपके माता-पिता पर कितनी बड़ी जवाबदेही है। फैमिली में अकेले तुम ही नहीं हो, तुम्हारे छोटे भाई हैं, व्याहने जोग वहनें हैं। बड़ा घर देखकर एक तो लोग योंही बड़ा दहेज मांग रहे हैं ऊपर से जब लड़कियों की मियंटी भावज आकर बैठ जाएगी तब जाने और क्या होगा।"

"पापाजी, आप अखबारों में ये डिक्लेयर कर दीजिए कि मैंने सुरेन्द्र को घर से निकाल दिया है। फिर कोई परेशानी ही न रहेगी। मुझे आपकी जायदाद से भी एक पैसा नहीं चाहिए।"

सुरेन्द्र ने बहुत ठंडे भाव से कहा परडा० श्याम मोहन सुनकर एकाएक झटका खा गए। सहसा कुछ जवाब न सूझा फिर हकला-हकलाकर अपना रौब चढ़ाते हुए बोले, "तुम्हें अ–क्या नामके–लज्जा नहीं आई मुझसे यह कहते हुए? तुमने अपनी मदर को भी यही जवाब दिया था। तुम अभी मां-बाप की भावना को नहीं समझते हो। तुम सब मॉडर्न फैशन वाले पति-पत्नी के रिश्ते को आशिकोमाशूक कीनज़र से देखते हो। माशूक की सोहबत जल्द से जल्द मिल जाए इसलिए शादी कर लेते हो। लव-मैरेजेज जितनी तेज़ी से बढ़ रही हैं उतनी ही तेज़ी से फेल भी हो रही हैं।"

सुरेन्द्र को हंसी आ गई, बोला, "पापाजी, राकेट तेज़ी से उड़ रहे हैं, तेज़ी से फेल भी हो रहे हैं, पर उतनी ही तेज़ी से स्पेस-ट्रैवेल की सफलता भी बढ़ रही है।"

"बहरहाल, वी पार्ट फार गुड। पिता के नाते मेरी शुभ कामना है, आशीर्वाद है। और चलते-चलते यह नेक सलाह भी दूंगा कि वह लड़की

तुम्हें चाहे कितना भी फुसलावे मगर तुम हरगिज-हरगिज मुसलमान मत बनना। बस! पिता होने हुए भी मेरी तुमसे यह हाथ जोड़कर प्रार्थना है।" डा० श्याम मोहन के नाटकीय ढग से हाथ जोड़ने में व्यग्य उभरा तो अवश्य पर कंठ और आँखें भर आईं। डाक्टर साहब ने अपना मुह घुमा लिया।

डा० सुरेन्द्र को अपने पिता के दु ख से दु.ख हुआ, वे बोले, "पापाजी, हमारे लिए धर्म बदलने की बात ही नहीं उठती। हमे जनम-मरन, शादी वगैरा के लिए किसी मुल्ला या पडित की जरूरत नही। मस्जिद-मदिर की हमें जरूरत नही। ईश्वर को मानते हैं मगर साइन्स की शक्ति मे उसे देखते है। खुद आप ही ने कब ये धार्मिक ढोंग और आचार-विचार माने? आप नाममात्र के लिए जन्म के संस्कारों से बंधे रहे। हमें वह भी भूठ लगा; हम उसे भी नही मानते।"

"तब मानते क्या हो आखिर?"

"यही कि हम भारतीय हैं। इनसानियत के सिद्धात, ईमानदारी, मेहनत, सचाई, दया, करुणा वगैरा जितना कोई भी कट्टर से कट्टर हिन्दू या मुसलमान मानेगा, उतना ही हम भी मानते हैं। बाकी क्रियाकर्म, जनेऊ नौरात्र, मुहर्रम वगैरह, पूजापाठ, धर्म-कर्म का पुराना बोझ हम क्यो लादें? इनसे हमें मिलना ही क्या है?"

"ठीक है भैया, हमारे ऋषि-मुनियो का सनातन धर्म जिसकी सारे ससार ने तारीफ की है, अब तुम्ही लोगों के हाथो समाप्त न होगा तो क्या कोई बाहर वाला आएगा। ठीक है···ठीक है···ठीक ही है!" डा० श्याम मोहन ने एक सर्द आह खीची और खिड़की से बाहर देखने लगे।

होस्टल की लड़कियों मे बडा जोश था। उनकी लेक्चरर, हरदिल अज़ीज़ और हसीन डा० निगार सुलताना की शादी हो रही है। डा० सुरेन्द्र-मोहन भी बड़े पॉपुलर हैं। लड़कियों, नर्सों और लेडी डॉक्टरों का यह आग्रह

रहे, मगर जैसे वह इस्लाम के पाबन्द हैं वैसे निगार भी रह सकती है। शादी और मज़हब में कोई सम्बन्ध नहीं। उसके लिए पुराने समाजी कायदों से बढ़कर चलने की जरूरत नहीं। समाज पुराने से नया होता है तो कायदे भी नये ही बनते हैं। मेरी दादी के वक्त में यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि मुसलमान लड़की पर्दे से बाहर निकलकर डॉक्टरी पढ़ सकती है, नौकरी कर सकती है। आज के समाजी कायदे में यह किसीको भी बुरा नहीं लगता। मैं अपनी पसन्द के एक आदमी से शादी कर रही हूं, इसमें मज़हब का सवाल ही कहां उठता है। हमारे बच्चे हिन्दुस्तानी होंगे। वे अपने ही किस्म के नये कायदों वाले समाज में पलें-बढ़ेंगे, शादियां करेंगे। हिन्दू-मुसलमानपन न हमारेलिए ही किसी काम का है और न हमारे बच्चों के काम का, फिर भी अब्बा उससे हमें बांधना चाहते हैं। यह नामुमकिन है…फिर भी अब्बा की नाखुशी अच्छी नहीं लगती। क्या किया जाए। मेरा कार्ड पाकर बेहद भड़के होंगे।

निगार अपने घर के हालचाल जानने के लिए व्याकुल थी। दोपहर में इशरत मियां आए तो बड़ी खुशी हुई। आतेही कहनेलगे, "बाजीजान, लेबोरेटरी में एक्सपेरिमेंट्स होते हैं तो क्या सबके सब कामयाब ही होते हैं ?"

"नहीं, फेल भी होते हैं। क्यों ?"

"परसों मैंने लव का एक एक्सपेरिमेंट किया था मगर फेल हो गया। जफर भाई अगर उसको कभी तूलतवील करके सुनाएं, जैसी कि उनकी आदत है, तो यकीन मत कीजिएगा। पहले मुझसे पूछ लीजिएगा।"

निगार ये फिजूल की बकवास इस वक्त नहीं सुनना चाहती थी, उसने कहा, "अच्छा, मगर पहले ये तो बतलाओ कि मेरा इन्विटेशन कार्ड घर पहुंच गया ?"

"अरे, उसीके लिए तो आपको मुबारकबाद देने आया हूं। आपका एक्सपेरिमेंट सेंट परसेंट सक्सेसफुल रहा। इसीलिए आया था कि मेरे पास शादी के लायक कपड़े नहीं हैं, जूते भी फटे हुए हैं। इस वक्त चचामियां और भाईजान से कुछ भी कहने की मेरी हिम्मत नहीं…"

"अरे कपड़े वगैरह तो सब आज ही खरीद लीजो मगर पहले ये बता दे मेरे अच्छे भैया, कि अब्बाजान कहते क्या थे ?"

सारा हाल सुना। दुःख हुआ मगर बेवस थी। तभी कमरे में कुछ लड़कियां आईं। एक ने कहा, "सुनिए डाक्साब, हम लोगों ने तय किया है कि सिविल मैरेज की रजिस्ट्री भी होस्टल में ही होगी और उसके बाद हिन्दुस्तानी ढंग से आप लोग एक-दूसरे को माला पहनाएंगे। डॉ० मोहन ने ये मंजूर कर लिया है।"

निगार यह सब नहीं चाहती। अब्बा सुनेंगे तो यही कहेंगे कि उन्हें नीचा दिखलाने के वास्ते ही यह धूमधाम की गई। लेकिन लड़कियों से यह बात वह क्योंकर खोलकर कहे ? और यों ये लोग सुनतीं नहीं, मज़ाक में टाल देती हैं। हाय, ये लड़कियां और मेरी साथिनें कितनी खुश हैं, कितने जोश में हैं। मैं भला इनकी कौन होती हूं। हाय री मुहब्बत, मैं कुर्बान ! निगार अपने चारों तरफ की गर्मजोशी से थोड़ी-थोड़ी हुई जाती है। उसकी दुनिया कितनी बड़ी है, उसका कुनबा कितना बड़ा है ?

बहन की इश्किया शादी ने तमन्ना की लौ फिर तेज़ कर दी। दोपहर को होस्टल में हसीन लड़कियों को देख-देखकर दिल भड़क उठा। इशरत मियां किसीसे इश्क करने के लिए बेताब हो उठे। आखिर कब तक मन की आग दबाएं ? अक्सर रातों में ज़फर और किशवर मिलकर फिल्मी गाने गाते हैं, इशरत का जी जलता है। वकील साहब की छत पर सामने ही अन्ने-शज्जो दो बहनें ऐसे कुदकड़े लगाती थीं कि इशरतअली का दिल उछल-उछल पड़ता था। एक दिन मुहब्बत की छेड़छाड़ के सिलसिले में एक टमाटर खींच मारा। अन्नो के गाल पर कच्च से फूटा, मगर उधर से जवाब में गुम्मा फेंका गया और उसी दिन से छत का खेलकूद भी बन्द हो गया। परसों की गलती के बाद जोश शायद कुछ दिनों तक ठंडा रहता मगर इश्कोमुहब्बत के इस माहौल में वे भला क्योंकर खामोश बैठें। शाम को रुपये लेकर गए, कपड़े-जूते खरीदे, बाल कटवाए, दस रुपये बचे तो सोचने

लगे कि किसपर खर्च करें।

दूसरे दिन बारात चलने से कुछ देर पहले डॉ० सुरेन्द्र मोहन को गोटे के हार का ध्यान आया। इशरत मिया ही सजे-बजे फालतू-से खड़े दिखलाई दिए, उन्हें ही दस-दस के दो नोट दिए और नौकर की साइकिल दिलवाकर अमीनाबाद भेजा।

इशरत मिया साड़ी-गोटे वाले के यहा पहुचे तो दो लड़किया देखीं। नशा छा गया; देखा तो देखते ही रह गए। जब दूकानदार ने टोका तो गोटे का हार खरीदा। दो रुपये की बचत उसमे भी कर गए, यही सोचकर कि शायद शरबत कोल्डड्रिंक पिलाने का मौका मिल जाए। दस कल की बचत के और दो ये। वकील दारोगाओ के लड़कियो को रिझाने के लिए इस वक्त टेंट मे भी बूता था और कमर का बूता तो भड़क ही रहा था···'हाय, क्या मीठी और बारीक आवाज़ें हैं, अंग्रेज़ी बोलती हैं तो लगता है चिड़िया चहक रही है। हाय, क्या अदा है, मासूमियत है, क्या मुस्कराहट है! मधुबाला ·· नन्दा···सईदाजान···आशा पारेख···उह! ये ये ही हैं।" चलने लगीं तो मुस्कुराकर बोले, "लाइए आपका बोझ मैं ले चलूं, आखिर एक मज़दूर तो चाहिए ही आपको।"

"नो, थैंक्स!" कहकर लिपस्टिक, कुर्ते, सलवार, दुपट्टे वालिया, कटे उड़ने वाले बालिया, धूप के चश्मो वालिया चलीं। इशरत मिया मुग्ध-बुग्ध बिसारकर उनके पीछे-पीछे चले। एक दूसरी दूकान में भी साथ-साथ रहे, बीच में कुछ टोक-टाक भी की मगर झिड़की खाई। आप यह सोचकर मुस्करा दिए कि पहली मुलाकात में भला किस बड़े से बड़े फिल्मस्टार को भी हीरोइनो की झिड़किया नहीं सुननी पड़ी हैं। इस दूकान मे निकलने लगे तो हौसले मे आकर शर्बत पीने के लिए दावत दे बैठे। "शर्बत? मैं पिलाती हूं आपको।" एक लड़की ने अपने हाथ के बंडल दूसरी के हाथ मे रखे और इशरत मिया के कान उमेठकर एक तमाचा लगाया, फिर दो तमाचे, फिर सैंडिल तड़ातड़-पटापट! तब तक भीड़ आई। जो आया उसीने मारा जिसके हाथों मे खुजली उठी उसीने टीप जमाई, ये वहीं सिर

झुकाकर बैठ रहे। एक सयाने उस्ताद की नजर इनकी जेब, साइकिल और हाथ के थैले पर पड़ी। बस, फिर क्या था। उसने पब्लिक के लिए चटपट तमाशा बना दिया। एक लौंडे को भेजकर नाई बुलवाया। भौं से लेकर दाहिनी ओर के सारे सिर के बाल सफाचट हो गए। भीड़ हंस पड़ी, कहा कि अब ये मजनूं जंचते हैं। सयाना बोला कि अभी नहीं, मजनूं ने जितने पत्थर अपने सिर पर झेले थे कमअजकम उतने झापड़ तो झेलें। घुटी खोपड़ी पर कड़ाकेदार टीपों का दूसरा दौर चला। इधर पब्लिक अपने खेल में मगन हुई, उधर सयाने उस्ताद के सयाने शागिर्द इशरत मियां का सारा माल ले भागे। इतने में एक कोलतार ले आया। इनके मुंह पर पोता गया। इशरत मियां पिटते-पिटते पत्थर हो गए थे। चेहरा काला कर दिए जाने के बाद सिर झुकाने की जरूरत भी न रही। सोचा कि अब एकाएक कौन पहचानेगा। बड़ी दुर्गत के बाद वहां से चले, बड़ी दूर तक उनकी लूल बोली गई। बहन की शादी और जलसे के वक्त इशरत मियां ये ऐश भोग रहे थे!

डॉ० सुरेन्द्र मोहन और निगार दोनों ही अपने-अपने बड़े-बूढ़ों की धार्मिक-सामाजिक खींचतान से मन ही मन बुझे हुए थे मगर आसपास के जोश ने उन्हें हरा-भरा बना दिया। बरात में सभी बड़े-बड़े डॉक्टर शामिल थे। निगार के भाई-भावज, कुछ मुसलमान सहेलियां, कुछ सहेलियों के साहब भी आए थे। डॉक्टर सुरेन्द्र के बहन-बहनोई, मंझला भाई और कई दोस्त रिश्ते के सजातीय भी मौजूद थे। अखबार वाले थे। बड़ी शानदार भीड़ थी। [illegible], [illegible], [illegible], भावुक आ गए: खाना हुआ, तस्वीरें हुईं, बड़ा मजा आया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पकाया हुआ मन लेकर शामिल हुए थे लेकिन जवानों की उमंग ने सबको ही हंसी-हौसले से भर-भर दिया। हरएक खुश था।

रात को दूल्हा-दुल्हन अपने बंगले पर पहुंचे। डॉ० मोहन ने सजावट के एक ठेकेदार से सुहाग-कमरे में फूलों की सजावट करवाई थी मगर आके देखा तो कमरे में अंधेरा गुप। बत्ती जलाई तो बढ़िया सजावट और फूलों की महक के साथ एक अजीब कलमुंही सूरत भी देखी। इशरत मियां थे। कुछ पूछने से पहले ही बोल उठे, "भाईजान, बात कुछ नहीं, सिर्फ एक एक्सपेरिमेंट और फेल हुआ। आशिकी करने के लिए भी अक्ल चाहिए। अब पढ़-लिखकर ही एक्सपेरिमेंट करूंगा। फिलहाल खाना खिलवा दीजिए, मार खाने से पेट नहीं भरा, बेहद भूखा हूं। कल बचा हुआ सिर मुड़वाने के लिए पैसे भी लूंगा आपसे। बाकी जो नुकसान हुआ उसे सह जाइएगा। आखिरकार आपकी जोरू का भाई हूं, सारी खुदाई से अलग।"

निगार और सुरेन्द्र दोनों ही हंस पड़े।

दूसरे दिन अखबारों में इस विवाह की शानदार रिपोर्ट छपी। पढ़कर डॉ० श्याम मोहन और प्रोफेसर अख्तर हुसैन के मनों पर मातम छा गया। दोनों ही सोच रहे थे कि दुनिया क्या सोचेगी। मगर दुनिया में दोनों ओर के रिश्तेदार किस्म के चंद लोगों ने ही इस खबर पर थोड़ा-बहुत तवज्जिया ध्यान दिया। कइयों ने इसे एक खबर के तौर पर पढ़ा और अच्छा कहा, बाकी दुनिया ने न पढ़ा, न कुछ सोचा और न कुछ कहा ही। दुनिया यों ही बरतती है।

(१९६१ ई०)

आदमी—जाना : अनजाना

कल विजयगढ़ से मेरे बड़े पुराने दोस्त और सहपाठी भूतपूर्व ताल्लुकेदार राजा शत्रुंजय सिंह का पत्र आया। लगभग दस-बारह वर्षों के बाद एकाएक उनका यह पत्र पाकर मुझे अचानकपन का अचम्भा, पुराने नेह की चमक-भरी खुशी और आत्मविश्वास की ताज़गी मिली। अपने जी की घुटन निकालकर शान्ति पाने के लिए पत्र लिखने के बहाने शत्रुंजय ने मुझे ही याद किया, इस बात ने मेरे दिल को छू लिया। बीच में कई वर्षों तक कलकत्ते में रहने के बाद अब फिर विजयगढ़ लौट आए हैं। अपने सुख-दुःख की जैसी मार्मिक छवि उन्होंने आंकी है वैसी तो साहित्य में भी कभी-कभी ही पढ़ने को मिलती है। खैर, राजा साहब की निजी बातों की चर्चा इस समय न करूंगा—विश्वासघात होगा—पर हम दोनों के बड़े परिचित एक पुराने ज़मींदार मियां एहसान अली खां की आत्महत्या के सम्बन्ध में उनके पत्र का एक अंश यहां उद्धृत कर रहा हूं—

"तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि अंतेपुर बरौरा के मियां जी ने परसों दिन में अपने फार्म हाउस में आत्महत्या कर ली। एक पत्र लिखकर छोड़ गए हैं, दो टूक-सी बातें : 'हिसाब बेबाक, न किसीसे लेना न देना, न प्यार न नफरत। मैं खुदा और शैतान के मसले से ऊबकर खुदकुशी करता हूं। दिल और कहीं ले चल ये दैरोहरम छटे। बकलम खुद एहसान अली

खां।' अभी दस मिनट पहले बाबूगंज बाजार में मुझे मिले थे। अपने अड्डे के लिए की दुकान पर बैठे हुए थे। मैं बरआ मऊ से विजयगढ़ आ रहा था। उन्हें देखा तो गाड़ी रोक ली। बड़े प्रसन्न हुए। गले मिले, हँसकर कहने लगे कि चलते-चलाते आपसे भी उम्र-भर की यारी का हिसाब-किताब बेबाक हो गया यह अच्छा हुआ। आपको याद होगा कि एक बार मैंने भी आपको कलकत्ते के रेसकोर्स में यों ही पहचाना था। फिर बेतहाशा हँसने लगे। मैंने यह ध्यान दिया कि मियां जी बात कम करते थे और हँसने अधिक थे। उनकी आंखों में बहके-बहकेपन की-सी भी कुछ लटक मिली। 'हिसाब बेबाक' वाली बात भी कुछ तकियाकलाम-सी लगी। मैंने सोचा कि मियां जी फिलासफी के मजनूं तो हैं ही, गर्मी के मौसम में कुछ सनक भी गए हैं। साठ से ऊपर के हो चुके, अकेले रहते हैं। इस लू-गर्मी में भी खेत में काम और शाम को घर आते ही आरामकुर्सी पर लेटकर कोई न कोई किताब पढ़ने का धधा। खाने-पीने का होश नहीं। नौकरों को क्या पड़ी है, एकाध बार पूछकर वे चुप हो जाते थे। मैंने मियां जी से बहला-बहला कर सब कुछ पूछ लिया। मन को बड़ा कष्ट हुआ। उसी दिन बातों के सिलसिले में वह बोले—'राजा साहब, मैं बहुत सोचने के बाद इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि न तो खुदा है और न शैतान। इन्सान ने अपने अदर वाले डर के ही दो नाम रख लिए हैं। दिल में खुदा रहता है और दिमाग में शैतान। मैं दोनों से आजिज आ गया हूं।' अंत में उन्होंने किया भी यही, एक रिवाल्वर कनपटी पर और दूसरा दिल पर रखकर बड़े दृढ़ निश्चय के साथ अपने दिल और दिमाग को एक साथ ही उड़ा दिया।" दोनों हाथों से पिस्तौल चलाने वाले, पक्के निशानेबाज, एक समय के सर-नाम शिकारी थे खां साहब।

समाचार पढ़कर मैं सन्न रह गया। मियां एहसान अली खां की सूरत, उनकी आवाज, तीस-इकतीस वर्षों की घनिष्ठता में उनके अनेकानेक व्यवहार, बहुत-सी बातें मेरे ध्यानरूपी वृक्ष में जीवन की कलियों-सी लद गईं, खिलने लगी। सब मिलाकर मियां एहसान अली खां आदमी बहुत भले

थे, मगर अपनी भावुकता के स्वयं शिकार थे। कुछ ऐसे पेड़-पौधे और जीव होते हैं जो दूसरों का सत चूसकर पनपते हैं, मगर मियां जी जीवन-भर खुद अपना ही कलेजा खाते रहे। भावुकता से लथपथ उनका अन्तर्द्वन्द्व हार-जीत की तड़प में जब-जब उबलता तब-तब उन्हें एक नया 'सत्य' मिलता था। उनके मन में तरह-तरह के बेमेल सत्यों की अजीब नुमाइश लग गई थी जिन्हें देख-देखकर वह स्वयं ही चौंधियाते थे। सन् तीस में पहली बार जब शत्रुंजय ने उनसे मेरा परिचय कराया तब वह हिन्दू-मुसलमान आदि सभी धर्मों को असत्य मानकर 'सोशलिज़्म' का सत्य अपनाए हुए थे; उसके तीन-चार वर्ष बाद उन्हें मुस्लिम लीग में सत्य मिला; फिर उन्हें सुन्नी सम्प्रदाय में असत्य और शिया सम्प्रदाय में सत्य दिखाई दिया; जब पाकिस्तान बना तो उनके मन में इस सुप्त सत्य ने जम्हाई ली कि चार पीढ़ियों से मुसलमान होने के बावजूद वह मर्यादा-पुरुषोत्तम रघुवंशी राम के वंशज हैं और अवध को छोड़कर कहीं और जा बसना कुफ्र है; इसके बाद यह सत्य पाया कि ईश्वर और शैतान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं : फिर ईश्वर और शैतान दोनों ही उन्हें दहलाने लगे। अक्सर कई तरह से मैंने उन्हें समझाया; वह समझ भी जाते थे पर अमल अपनी नासमझी पर ही करते थे। मैं समझता हूं कि उनके सभी सत्यों का अंत शायद इसी निर्मम कटु सत्य के रूप में ही हो सकता था—अपने दिल और दिमाग की उलझनों से तंग आकर उन्होंने दोनों को ही उड़ा दिया।

सन् तीस में मैंने और शत्रुंजय ने बी० ए० की अंतिम परीक्षा देने के बाद पिंडारी ग्लेशियर की सैर करने की योजना बनाई। शत्रुंजय को विजयगढ़ और वहां से दो रोज़ के लिए अपने मामा राजा साहब सुमेरपुर के यहां जाना था, उनके पोते की छठी का जश्न था। वहां से वह निश्चित तिथि के पांच रोज़ बाद लखनऊ पहुचे। मियां जी उनके साथ थे। उनके आने की खबर पाकर नौजवानी के आलम में अपने गुस्से को नाटकीय बनाने के लिए मैंने अपनी छूंछी राइफल हाथ में उठा ली और नीचे

ड्राइंग-रूम में मित्र से सामना होते ही मैंने राइफल तानकर कहा—'शत्रु, खड़े हो जाओ, मैं तुम्हें शूट करूंगा।" उनके पास बैठे एक अपरिचित भद्र नवयुवक, यही मियां जी, हाथ जोड़कर कहने लगे—"लिल्लाह, गेहूं के साथ घुन को न पीसिए। यह तो एक ही बार में मरकर छुट्टी पा लेंगे, लेकिन मुझे गवाही देने कचहरी में रोज़-रोज़ मरना पड़ेगा।" हम ठहाका मारकर हंस पड़े। उनकी मीठी आवाज और बेतकल्लुफी ने मेरे मन पर पहले प्रभाव की ऐसी व्यापक छाप छोड़ी कि अब तक उससे मुक्त नहीं हो पाया। औसत कद, गोरा-गठीला बदन, सिर पर हल्का गजापन, आंखों पर मोटे शीशों वाला चश्मा गम्भीर, शान्त और अपनी ओर आकर्षित करने वाला मुख-मण्डल—मियां जी का समूचा बाहरी व्यक्तित्व मुझे भा गया : बाद में परिचय बढ़ने के साथ-साथ उनकी वह गम्भीर शांति कभी-कभी मुझे ठीक वैसी ही आकर्षक और भय-सचारिणी लगने लगी जैसी सुनसान जंगल में अगम पानी भरी बावड़ी लगती है। अपनी प्यास से मजबूर, बावड़ी की टूटी जगत पर संभलकर खड़े होने के बावजूद पानी खीचने के लिए झुको तो ऐसा लगता है कि पानी हमें अपनी ओर जोर से खींच रहा है, उस कशिश से अपने को बचाने के लिए हमें बार-बार अपना शरीर साधना पड़ता है। मियां जी के प्रति प्रेम और भय के दोहरे प्रभावों के बीच मैंने सदा यों ही स्वयं को साधे रखा।

उनका जन्म रघुवंशी ठाकुरों के एक सम्पन्न नौ-मुस्लिम जमींदार परिवार में हुआ था। उनके परबाबा मुसलमान हुए थे और वह भी अजीब परिस्थिति में फंसकर। बानक यों बने कि पछाह के एक कुलीन ठाकुर का अपने पड़ोसी गांव के पठान जमींदार से कठिन बैर बंध गया। यह एक गांव के जमींदार थे और वह इनसे कहीं अधिक सम्पन्न, समर्थ और विकट था। एक रात ठाकुर के घर पठान के गुण्डों ने अचानक और बड़ी खामोशी के साथ चढ़ाई की। छत की कंगूरेदार मुंडेर तक पिछवाड़े से रस्सी फेंक और फंसाकर वे लोग घर के अंदर आ गए; न लूटपाट की न औरतों को सताया, खाली शोर मचाने के डर से उन्हें एक कोठरी में बंद कर दिया

और बाप-बेटे ठाकुरों को अपनी गिरफ्त में लेकर खम्भों से बांध दिया, उनके जनेऊ तोड़ दिए, मुंह में हड्डी ठूंसकर पट्टियां बांध दीं। घर की रसोई और ठाकुरद्वारे में घर के पवित्र पशु को मारकर उसके शव के टुकड़े फेंक दिए और फाटक खोलकर शान से निकल आए। ठाकुर की ड्योढ़ी पर बाहर सोए हुए दो-एक आदमी जाग पड़े। उधर नहर पार पहुंचते ही गुंडों ने लगातार आठ-दस हवाई फायर दाग दिए। गांव-भर में जगार हो गई, लोग समझे कहीं डाका पड़ा; परन्तु थोड़ी ही देर में गांव वालों को अपने ज़मींदार और उनके पुत्र के धर्मनाश का समाचार मिल गया। छोटे-बड़े, शत्रु-मित्र हरएक को धक्का लगा। हरएक बदला लेने के लिए उबला पड़ता था, ठाकुर को चंग पर चढ़ा रहा था। ठाकुर ने समझदारी से काम लिया। हिन्दू धरम और जाति-बिरादरी से तो गए ही गए, अब मुसलमानों से भी रार बढ़ाएं तो रहें किस दुनिया में। उन्होंने अपने शत्रु को मित्र बनाया। सपरिवार मुसलमान हुए। ज़मीन-जायदाद उसी पठान के हाथ बेची और उसीकी सलाह और सिफारिश से अवध में आए, बरौरा गांव खरीदा और बस गए। ठाकुर और उनका परिवार तन से मुसलमान हुआ था, मन से नहीं। वह अपने पुत्र और पुत्री का सम्बन्ध ऐसे नौमुस्लिम परिवारों के साथ ही करना चाहते थे जो उच्च कुल के हों और जिन्होंने उन्हींके समान उसी पीढ़ी में सपरिवार धर्म-परिवर्तन किया हो। ऐसे न मिले। हारकर पुत्र का विवाह एक ऐसे सम्पन्न कुलीन ठाकुर की कन्या से किया जो एक ईरानी वंश की एक विधवा पर मुग्ध होकर मुसलमान हुआ था। पर लड़की के लिए वह विशुद्ध हिन्दू रक्त का वर चाहते थे। अन्तेपुर के रघुवंशी ज़मींदार से उनका मेल-जोल हो गया था। वे लोग आठ-दस गांवों के स्वामी, सम्पन्न व्यक्ति थे, भले थे। बूढ़े ज़मींदार मरे तो उनके लड़के ने भी उन्हें वैसे ही आदर-मान दिया। युवक ज़मींदार की पत्नी द्विरागमन से पहले ही मर गई थी। ब्याह के लिए चारों ओर से बातें आ रही थीं। नौमुस्लिम ठाकुर के मन में स्वार्थवश पाप उदय हुआ। अपने छिपे हुए धर्म-हठ के आगे उन्होंने नैतिकता को बलिदान

दिया। युवक जमींदार को बहाने से अपने यहाँ ले गए। घर के लड़के की तरह घर के अन्दर प्रवेश दिया। कुलीन आबरूदार घरों की बहुत-सी जवान विधवाओं की तरह ठाकुर की विधवा बहन भी कुट्टनीमतम में घुटी हुई थी। लड़की बड़ी सुन्दर थी। बस, बानक बन गए। अन्तेपुर के रघुवंशी ठाकुर बरौरा वालों के दामाद बनने के लिए खुशी से मुसलमान बन गए। उनकी विधवा मा, दादी और काकी बरौरा वालों को कोसती हुई काशी-वास करने चली गई। अपने बुढ़ापे में अन्तेपुर के ठाकुर शुद्धि-आन्दोलन से आन्दोलित होकर सपरिवार शुद्ध हुए, पर हिन्दुओं ने रोटी-बेटी में घाना-कानी दिखलाई। तड़पकर फिर मुसलमान हो गए। इस बार सुन्नी न होकर शिया सम्प्रदाय से जुड़े। जिस तरह उनके ससुर को विशुद्ध हिन्दू रक्त का दामाद खोजने का आग्रह था उसी तरह इन्हें उच्च कुल के विशुद्ध मुस्लिम परिवारों की संतानों से सम्बन्ध करने की जिद हो गई। यह आसान काम न था, पर किसी न किसी तरह सफल हो ही गए। तब से इनके घराने में हिन्दुओं के प्रति घोर घृणा-भाव ने घर कर लिया। पर इसके साथ ही साथ रघुवंशी होने का जोश भी परम्परागत होकर बढ़ता रहा। मियां जी के बाबा ने रियासत की बड़ी बढ़ोतरी की; उनके पिता ने भी बड़ी माया-महिमा बढ़ाई, अंग्रेज सरकार से राजा का व्यक्तिगत खिताब पाया। राजा साहब अपने बेटे को छुटपन से ही ये नसीहत दिया करते थे कि कट्टर मुसलमान बनो। हिन्दू मजहब कुफ्र की बातों से भरा है, उन्हें सुनने से पहले ही कानों में उंगली दे लो, उनके हर देवी-देवता के नामों पर थूको, मगर सिरी रामचदर जी का नाम सुनते ही अदब से सिर झुका लो। वह हमारे खानदान के पुरखे थे। अवध का तहजीबो-तमद्दुन इसीलिए मुसलमानों में भी सारी दुनिया से आला माना जाता है।

मियां जी राजा साहब अन्तेपुर-बरौरा के छोटे कुमार थे। बचपन से ही किताबी कीड़े हो गए, पढ़ाई में तेज निकले। लखनऊ के कालिवन ताल्लुकेदार कालेज में पढ़े, फिर कलकत्ता यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में एम० ए० पास किया। पी-एच० डी० की तैयारी में लगे और बंगाली नौज-

वानों की संगत में मार्क्सवादी भी हुए। हिन्दू काफिर हैं, रामचन्द्र पुरखे थे, इस्लाम सच्चा है—मियां जी बचपन से ही अपने मन में इन बातों को लेकर बेहद उलझे हुए थे। अब सुलझाव पाया, कहने लगे कि हिन्दू धर्म भी झूठा है और मुसलमान धर्म भी। अल्लाह भी झूठा है और राम भी। सच्चा सोशलिज़म है। बाप ने यह सब सुना तो नाराज़ होकर गांव में बुला लिया। साल-भर के लगभग घर ही में कैद रहे, ज़मींदारी के काम में डाल दिए गए। मगर किताबों के पार्सल आते रहे, मियां जी ने पढ़ने की आदत न छोड़ी। किताब छूटती तो बंदूक हाथ में आ जाती। निशानाबाज़ी दूसरा नशा था। उन्हीं दिनों एक बार अपनी फूफी के घर जाने पर उनके एक गरीब मुंशी की पढ़ी-लिखी लड़की पर रीझ गए। हठ ठानने पर उससे उनकी शादी भी कर दी गई।

सन् तैंतीस में पन्द्रह दिनों के अंदर ही हैज़े में उनके पिता, बड़े भाई, भावज और एक भतीजी का देहान्त हो गया। उनकी पत्नी और बेटा वहां न होने के कारण बच गए। मियां जी पर जग का भार आया। उन्होंने अब मुक्त होकर अपने समाजवादी स्वप्न को साकार करना चाहा। पुस्तकों से यूरोप के बड़े-बड़े खेती फार्मों की प्रेरणा लेकर उन्होंने भी एक लिमिटेड सहकारी कम्पनी की योजना बनाई। उन्होंने अपनी प्रजा में छोटे-बड़े किसानों को भागीदार बनाने की नीयत से एक सभा बुलाई। किसानों को मियां जी की समाजवादी ऊंची-ऊंची बातें तनिक भी पल्ले न पड़ीं बल्कि उल्टे यह डर बैठ गया कि मियां जी उनके मौरूसी पट्टे हड़प करना चाहते हैं। इसपर आन्दोलन छिड़ गया। कांग्रेसियों ने उनकी 'टोडी बच्चा हाय-हाय बुलवा' दी। मियां जी कुम्हला गए, बड़े दुखी हुए।

पर उन्होंने हिम्मत न हारी। सत्यों के बहाव में बहते रहे। उन्होंने इस बीच में खेती का फार्म अपनी खुदकाश्त ज़मीन पर खोला और उसमें जी-जान से जुट गए। आगे चलकर उन्होंने चार बड़े-बड़े निजी फार्म कर लिए। पैसा कमाया। लखनऊ आने पर मुझसे अवश्य मिलते थे। शत्रुंजय सिंह आज़ादी के बाद ज़मींदारी-उन्मूलन हो जाने पर अधिकतर कल -

कत्ते में ही शेयरों का धंधा करते हुए रहने लगे थे। कलकत्ता जाने पर मियांजी उनसे भी मिल आते थे। हम लोगों के प्रति उनका विश्वास अटूट था और उनके रंगारग सत्यान्वेषणों के बावजूद अन्त तक वैसा ही बना रहा। जब उनका दिल घुटते-घुटते पक जाता तो वह अवश्य ही किसी न किसी बहाने से मेरे पास आते और अपना दुखड़ा मुझे सुना जाते थे।

सहसा चार-पांच बरस पहले उनका एक दिन का आना मुझे याद आ रहा है। उनकी अजीब दशा हो रही थी। बहुत दुबले हो गए थे। चेहरा पीला और अधिक गम्भीर हो गया था। थोड़ी देर कुछ संक्षिप्त-सी इधर-उधर की बातें होने के बाद एकाएक मेरे पास आकर बैठते हुए मेरे हाथ पर अपना हाथ रखकर कहने लगे—"त्रिभुवन, तुम्हें एक राज की बात बतलाता हूं। किसीसे कहना मत, क्योंकि दुनिया इन बातों पर यकीन नहीं कर सकती। दुनिया में हर किसीको साइंटिफिक तरीके से सोचने की फुरसत ही नहीं, सोचने वालों को वह पागल समझती है। मुझे भी समझा, यानी कि···हद है, हद है। तभी तो मुझे तुम्हारी याद आई, सोचा कि तुम समझोगे, एप्रीशिएट करोगे।"

मैंने मियां जी को कभी एक सांस में इतना बोलते हुए नहीं सुना था। आश्चर्य हुआ, फिर सोचा कि अकेले में घुटते-घुटते ही शायद उनमें अधिक बोलने की प्रवृत्ति बढ़ी है। मैंने सोचा कि उनसे पूछना उचित न होगा—उन्हें बोलने दिया जाए, उनके जी की घुटन जिस तरह खुले, खुलने दिया जाए।

एक सांस में बोलते-बोलते मियां जी का दम फूल आया; रुक गए, फटीफटी आंखों से एकटक अपने सामने वाली खिड़की के बाहर देखते रहे; फिर हंसे, फिर चौंककर मेरी ओर देखा, बड़े आत्मीय भाव से मुस्कराए, उनकी आंखों से नेह का ज्योति-निर्झर बहने लगा। मेरी दृष्टि बंध गई। मियां जी अपूर्व सुन्दर, सम्मोहक लग रहे थे। उनकी आंखों में···क्या कहूं, सही व्याख्यात्मक यथार्थवाचक शब्द नहीं मिल रहे···उनकी आंखों की उस स्नेहभरी चमक में एक अजीब कशिश थी। ऐसा लगता था जैसे

लगती है। तुम्हें मालूम है—मैं ही अपने खानदान का आला बुज़ुर्ग शीरी उनकी पुतलियों के अन्दर से सफेद रंग के दिव्य फूलों का झरना झर रहा हो। अनुभव के वे दो-चार पल समय की नाप से नहीं बांधे जा सकते, वे तल्लीनता के क्षण थे जिनके आगे लम्बे-लम्बे युगों और कल्पों का हिसाब भी छोटा पड़ जाता है। हंसी के बाद जब मुंह से बात फूटी तब आंखें नार्मल हुईं। कहने लगे—"इस्लाम नहीं मानता, मगर मैं मानता हूं। कई बार आंखों-देखी बात को भला क्यों कर न मानूं? इसी पर लोग हंसते हैं, पीठ पीछे कहते हैं कि दीवाना हो गया है। कह लो। मैं भी कहता हूं कि सूफी हो गया हूं। गांव के बच्चों को भड़का दो कि पत्थर मार-मारकर मेरा सिर लहू-लुहान कर दें। मैं समझूंगा कि सिर पर लालाजार के फूल खिल आए हैं—जुनूं गुलकदां ऐयामे बहार अस्त—मेरे पागलपन में फूल आए हैं, लगता है कि जिन्दगी में बहार आ गई है।" कहकर हंसने लगे।

मैंने पूछा, "क्या देख लिया मियां जी?"

"क्या देखा? राज़ की बात है। वही, जो मौलाना रूम ने देखा था, तुम्हारे ऋषि-मुनियों ने देखा था, मैंने भी देखा है, अक्सर देखता हूं...... अक्सर देखता हूं कि हफ्तसद हफ्ताद कालिब्र दीदा अम। हम चु सब्ज़ा बारहा रोईदा अम।" एक लम्बी सर्द आह खींचकर मियां जी फिर खोई आंखों से देखते हुए अपने अन्दर कहीं एकटक हो गए। उनके ओठों पर बड़ी भीनी मुसकान की लहर खिच गई।

मैं फारसी नहीं जानता, शेर का मतलब न समझ पाया। मौलाना रूम, ऋषियों और स्वयं मियां जी से जुड़ी हुई बात जानने की उत्कंण्ठा हुई, गो मुझे उनके पागलपन पर यकीन हो चला था। मैंने छेड़ा "मियां जी, शेर का मतलब तो बतलाइए।"

"ऐ मियां! क्या कहा?"
उनकी चौंक थमी, मुस्कराए,
मैं सात सौ सत्तर जिस्मों में रह
कई बार उगी हूं, मिटी हूं। मैंने

दुहरा दिया। मनकर
की रूह
मैं
।

गुज़िश्ता (गुज़रे हुए) और आने वाली ज़िन्दगियों की फ़िल्म दौड़ने रामचन्द्र जी था। रावना मेरी सीता को हर ले गया था। तब से ज़िन्दगी दर-ज़िन्दगी रावना मेरी बीवी को मुझसे दूर ले जाता है। मैं बहुत लड़ा, बहुत लड़ा। देखो, इस बार रावने की रूह मेरे ससुर के जिस्म में आई और मेरे बीवी-बच्चों को पाकिस्तान बहकाकर ले गई। कहां तक लड़ूं? मैं रावने से भी आजिज़ आ गया हूं और अपनी शरीके ज़िन्दगी-दर-ज़िन्दगी-दर-ज़िन्दगी मुसम्मात इफ़्तिख़ार उन्निसा बेगम से भी। अगली ज़िन्दगी में ये फिर मेरे पास आना चाहते हैं। लेकिन मैं नहीं आने दूंगा—हरगिज़ नहीं आने दूंगा।" मियां जी गुस्से में आंखें निकालते हुए मुट्ठियां कसकर खड़े हो गए, उत्तेजना से कांपने लगे।

मियां जी की यह हालत देखकर मुझे आंतरिक क्लेश हुआ। मैं जानता हूं कि उन्हें अपनी पत्नी से अपार प्रेम है, वह भी उन्हें बहुत चाहती थी। उन्होंने पर्दे में रहकर बी० ए० तक अंग्रेज़ी पढ़ी। फूफी के घर पर इनकी पहली मुलाक़ात हुई। प्यार हो गया। वह उनकी रियासत में काम करने वाले मुंशी जी की लड़की थी। फूफी ने अपने भाई राजा साहब को समझा-बुझाकर उनकी शादी करवा दी। राजा साहब ने फिर भी मुंशी जी को समधी की हैसियत से न देखा। उनके मरने के बाद ही मुंशी अपने दामाद की रियासत में आकर रहने लगे। बड़े कारसाज़ आदमी थे, ऊपर से कट्टर सुन्नी। ये लोग शिया थे। इनके यहां कारिन्दे भी ज़्यादातर या तो शिया थे या ठाकुर। मुंशी जी ने एक-एक कर बहुतों को निकलवा दिया पर सबको न निकलवा सके। कांग्रेस-लीग की तनातनी में उन दिनों जब भी कोई ख़ास खिंचाव आता तब यह इनकी रियासत की ग़रीब हिन्दू प्रजा पर तरह-तरह के अत्याचार करने के बहाने ढूंढ निकालते थे। मियां जी को इससे बहुत दुःख होता था लेकिन अपनी पत्नी के कारण उनका कुछ बस न चलता था। मियां जी बस एक ही तरीके से अपने ससुर का अपमान करते थे, उनके सुन्नीपन को चिढ़ाने के लिए यह तबर्रा पढ़ते थे। मुंशी जी ने भी इससे ऐसा बदला लिया कि अब तक यह उसीका नतीजा भुगतने

रहे। इनके दोनों बच्चे शुरू से ही अपने नाना की मज़हबी नसीहतों पर चले। यों भी दोनों ही पढने-लिखने में बड़े तेज़ निकले। स्कूल से यूनिवर्सिटी तक नाम हासिल किया। मियां जी फूले न समाते थे, मगर दिखावा उनकी आदत में न था। सुबह से अपने फार्म पर चले जाते थे। वहां भी एक मकान बनवा लिया था और छोटी-सी लायब्रेरी वहां भी बना रखी थी। एक छोटी-सी खेती-किसानी सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयोगशाला भी बना रखी थी। अक्सर वहीं रह जाते थे। जब कभी शाम को घर आते और लड़के छुट्टियों में घर पर होते तब भी कोई खास भावनात्मक चहल-पहल नहीं दिखलाते थे। बस एक बार दोनों को बुलवाकर देख लेते थे—"दिन आराम से बीता? मैंने इस बार जो नई किताबें मंगवाई हैं, देखीं? जाओ, आराम करो।" बस इतनी संक्षिप्त-सी बातें! कभी और मौज में आए तो कह दिया, "ऐसे काम करो कि तुम्हारी मां के दूध की लाज रहे। तुम दोनों ही बड़े आला खान्दान के सपूत हो। अवध की कल्चर दुनिया में सरनाम है। हज़रते आदम के बड़े बेटे हज़रते शीश यहीं आकर बसे थे। तुम उस आला खान्दान के हो जिसमें कि शिरी रामचंदर जी और लछमन जी पैदा हुए थे। उन्होंने हिन्दुओं को रोशनी बख्शी, तुम दोनों भी रामो लछमन की तरह दुनिया को नई रौशनी दो।" नाना ने शुरू से ही लड़कों को राम और लछमनके खिलाफ भरा। बाप-दादा के कुल को तुच्छ बताते हुए नाना बच्चों से कहते थे, "आखिर हैं तो ये लोग काफिर ही। इस्लाम की बारीकियों को क्या जानें। इनके खान्दान में तुम लोग खुशकिस्मत हो जो पहली बार सही मज़हबी तालीम पा सके। तुम्हें अपने खून से खानदानी कुफ्र का असर निकाल देना होगा।" धुर बचपन से नाना उनके कानों मे ये बोल भरते रहे। बच्चों को अपने पिता और पुरखों के खून से घृणा हो गई। वे उसकी वजह से अपने को मन ही मन हीन समझते थे। विद्यार्थी-जीवन में ही कट्टर मुस्लिम-लीगी बने। बड़ा लड़का तेज़ी से राजनीतिक प्रकाश में आने लगा। दंगे के दिनों में लड़कों के नाना ने कई गांवों की छोटी हिन्दू प्रजा को सताया। पर जब वह स्वयं ब्राह्मण ठाकुरों के पाले पड़े तब बड़े

लड़के ने अखबारों में बड़ा शोर मचाया। मियां जी बोले कि अन्याय हमारी ओर से हुआ है। उन्होंने अपने ससुर पर सीधा आरोप लगाया। दोनों लड़के इसपर बिगड़ उठे। पत्नी मौन रही। ससुर ने तो खुलेआम कह दिया कि तुम्हारे खून मे भरे हुए कुफ्र को तुम्हारे बच्चे धो रहे है। मियां जी चौंक उठे। अपनी लायब्रेरी में चले गए।

देश का बटवारा होते ही इन लोगों का यहां से जाने का मसला सामने आया। मियां जी बोले—"अवध से ज्यादा पाक और कोई जगह हिन्दोस्तान में नहीं।" बड़े लड़के ने झुंझलाकर ज़बान से वार करने शुरू किए, अवध की शान मे, उनके आला खानदान की शान में, राम-लछमन की शान में—उसकी बकवास यहां तक पहुंचते ही मियां जी का हाथ झपट-कर लड़के के गाल पर तड़ से पहुंचा। जीवन में पहली और अंतिम बार उन्होंने किसी इंसान को तमाचा मारा था। खुद भी झटका खा गए, मगर गुस्सा तेज था। छोटा लड़का बाप पर झपटा, मां ने बढ़कर जकड़ लिया। मियां जी चौंक पड़े, फिर क्रोध उबला। पत्नी से गम्भीर मुद्रा में कहा, "आपके पास डेढ़ लाख के जेवर हैं। आप चाहें तो अपने बच्चों को उन्हें दे सकती हैं मगर बाप-दादों की जायदाद से वे एक फूटी कौड़ी भी न पाएंगे।" कहते हुए वह अपने पुस्तकालय हाल में चले गए। हाल को अन्दर से बन्द करके उन्होंने मुस्लिम लीग के एक बड़े सम्मानित और प्रभावशाली नेता से फोन पर ट्रंक-काल मिलाया, उनसे लड़कों की बदतमीज़ी और अपना निश्चय बतलाया। यह भी कहा कि वे लोग अपने नाना की गैर-इस्लामी तालीम के असर से मुझपर ज़ोरोजब्र कर सकते हैं, मुझे शायद जान से भी मार डालें। नेता ने इन्हें दिलासा दिया और बड़े लड़के को फोन पर बुलवा देने के लिए कहा। लड़के को नेता का हुक्म मानना पड़ा, फोन पर बाप के लिए ज़ाहिरा अदब भी दिखलाया और उसके बाद क्रोध में दांत पीसते हुए कहा, "आपको अपनी औलाद से ज्यादा दौलत की चाहत है तो लीजिए, मुबारिक हो आपको यह दौलत और अपने काफिर भाई-बन्दों का साथ। मैं पाकिस्तान के लिए इससे भी बड़ी-बड़ी कुर्बानियां

कर सकता हूं।"

लड़के नाना के साथ पाकिस्तान चले गए। बेगम मियां जी के पास रहीं लेकिन गम में घुलने लगीं। उन्होंने कहा कि कुछ दिनों के लिए बच्चों के पास चली जाओ। खुशी से इजाज़त देता हूं। बच्चों को भी तुम्हारी ज़रूरत है।

जाते समय पत्नी ने बच्चों की ओर से क्षमा-याचना करते हुए उनके लिए पति का पितृ-स्नेह उभारा और समझा-बुझाकर दो लाख बच्चों के लिए ले गईं। दोनों लड़कों ने वहां से मियां जी को बड़े विनम्र पत्र भेजे और उसके बाद से देवाशरीफ की जियारत के लिए हर साल आने लगे। पत्नी यहां-वहां दोनों जगह बनी रहने लगीं।

उन्हीं दिनों में एक बार मेरे यहां आने पर मियां जी ने कहा था, "मेरी वाइफ अपने दोनो बेटों, दोनों बहुओं और पोते को लेकर देवा-शरीफ की जियारत के लिए आ रही है। पोते को देखने की उमंग मुझे ललचाती ज़रूर है लेकिन सोचता हूं, अब वह खून का असर उसमें कहां रहा? न वह अवध को प्यार करेगा न अपने आला खानदान को। और यह देवाशरीफ की जियारत भी सरासर धोखा ही है मेरे दोस्त! मैं सब समझता हूं। बेगम दो-तीन साल से लगातार मुझे समझा रही है कि अब अपने लिए एक ही फार्म रखना काफी होगा। बाकी सब बेच दो। लड़के भी इसी खुशामद में हर साल आते हैं। वहां वे लोग बड़े अफसर हैं, हर रंग की सरकार के साथ खूबी से निभाते चले जा रहे हैं। उसी बेईमानी की नीयत से मेरे ये बेटे अपने काफिर खून वाले बाप की खुशामद भी करते हैं। दरअसल सच्चे मुसलमान वे या उनके नाना नहीं, मैं हूं। खुदा उनके पास नहीं, मेरे पास है। इस बार मैं तुम्हें यह साबित भी कर दिखलाऊंगा। मैं उनकी मर्ज़ी के मुताबिक पचास हज़ार रुपया अपने पास रखकर बाकी साढ़े पांच लाख भी उनके हवाले कर दूंगा। देख लेना उसके बाद मेरे लड़के फिर कभी देवाशरीफ की जियारत करने के लिए हिन्दो-स्तान न आएंगे।"

और हुआ भी यही। लड़के फिर न आए। कभी-कभी खत लिख देते थे। बेगम अवश्य ही फिर लड़कों के साथ न गईं। पिछले वर्ष मियां जी के ससुर का पाकिस्तान में देहान्त हो गया। तब गईं और फिर कभी न आईं, दो महीने के बाद वहीं उनका भी शरीरांत हो गया। उसके बाद मियांजी और भी गम्भीर हो गए। समाचार पाने पर मैं मातमपुर्सी के लिए अन्तेपुर गया था। मुझे उनके चेहरे पर पागलपन के आसार दिखलाई दिए। आप ही आप चौंक उठते थे, डरते थे, बड़बड़ा उठते थे। मैंने उनसे कहा—"मियां जी, मेरे साथ लखनऊ चलिए। कुछ रोज मेरे साथ रहिए।"

"मैं तो चाहता हूं—मैं तो चाहता हूं—पर ये मेरे दुश्मन मेरा पीछा छोड़ें तब तो!" मियांजी उदास हो गए।

"कौन-से दुश्मन, मियांजी?" मैंने पूछा।

"ऐं? दुश्मन? नहीं-नहीं वह कुछ नहीं।" फिर कुछ देर चुप रहने के बाद कहने लगे—"त्रिभुवन, मैं तुमसे भेद की बात कहता हूं, सोशलिज्म एपार्ट, खुदा और शैतान दोनों ही हकीकत हैं। मैंने अपनी आंखों से उन्हें देखा है, रोज देखता हूं। दो किस्म की रोशनियों के गोले मेरे पास आते हैं, स्याह और सफेद। मैं तुमसे सच कहता हूं, वे दोनों गोले मेरी आंखों की पुतलियों से ही निकलते हैं, दो जर्रे मेरी आंखों के आगे नाचने लगते हैं, एक दूसरे को घेरकर नाचते हैं। मैं तुमसे बयान नहीं कर सकता, ये जर्रे कितने बड़े हो जाते हैं, मैं कमरे में बैठा होता हूं, तो कमरा भर उठता है, बाग में, फार्म में होता हूं, तो धरती-आसमान भर जाते हैं, दुनिया गायब हो जाती है, बस यही स्याह और सफेद रोशनियां चमकती हैं नाचती हैं एक दूसरे पर झपटती हैं। हैरत होती है त्रिभुवन, कि इन रोशनियों का कोई जिस्म नहीं है मगर कभी उनपर दो आंखें चमकती हैं, कभी ज्यादा और कभी-कभी तो बेशुमार! दो आवाजें आती हैं, क्या कहूं कैसी हैं वे आवाजें! मेरे बयान से बाहर हैं, तरह-तरह के बाजों की आवाजें, तरह-तरह की डरावनी आवाजें, कभी उनका जादू मुझे लुभाकर बांध लेता है,

कभी यह महसूस होता है कि किसी आवाज़ ने मुझे उठाकर हवा में फेंक दियाऔरमैं घंटों अधर में ही लटका रहता हूं और उन रोशनियों की बेशुमार आंखें मेरे सिर पर और मेरी छाती पर शहद की मक्खियों की तरह छत्ते बनाती हैं, उनमें आंखों के अंडे, बच्चे पनपते हैं। मेरे तमाम बदन में आंखें ही आंखें चुभ जाती हैं। जब ये आंखें लड़ती हैं तब मुझे बेशुमार डंक चुभते हैं। मैं तड़प उठता हूं। हाय, किससे कहूं ये भेद की बात ? कोई मुझपर यकीन नहीं करता।" उनकी आंखें नम हो गईं।

उनकी हालत देखकर मुझे लगा कि मियांजी अकेले में रहते-रहते बहक गए हैं। बहुत समझाने के बाद भी मैं उन्हें अपने साथ न ला सका। कहने लगे, "फार्म तबाह हो जाएगा। अब यही तो सहारा है। मैंने अपनी वसीयत लिखकर रख दी है। अन्तेपुर वाले महल में मेरे मरने के बाद एक इंटरमीज़िएट कालेज खोला जाएगा, उसका नाम होगा श्री रामचन्दर मुस्लिम इंटरमीज़िएट कालेज। यह फार्म बेचकर सरकार आसानी से सत्तर-अस्सी हज़ार रुपया पा सकती है। पचास हज़ार बैंक में जमा हैं। जीता रहा तो बीस-पचीस हज़ार और भी इसी फार्म से कमाकर रख जाऊंगा। मेरे अवध के हज़ारों बच्चे वहां पढ़ेंगे। अवध का नाम होगा! खुदा खुश होगा।...पर समझ में नहीं आता कि शैतान को क्योंकर खुश करूं ?"

मैं समझता हूं कि शैतान को खुश करने के लिए ही उन्होंने अपनी जान दे दी।...

(१९६२ ई०)

मां-बाप और बच्चे

चार एकड़ भूमि का हाता, चार मंजिला महलनुमा कोठी, जिसके रख-रखाव पर ही नौ सौ रुपये महीने का खर्च आता है। चार ड्राइवर, एक एकाउण्टेण्ट, एक प्राइवेट सेक्रेटरी, क्लर्क और केयरटेकर का वेतन भी सब मिलाकर बारह सौ रुपये महीने से कुछ ऊपर ही हो जाता है। घरेलू नौकर, आया, महरी सब मिलाकर चौदह प्राणी हैं जिनमें तीस रुपये महीने से कम किसीका वेतन नहीं है। कोठी का पोर्टिको और बाहरी रुख लाल पत्थर का बना हुआ है और अन्दर संगमर्मर और मुगल-इटैलियन स्थापत्य-कला का चमत्कार, विलायती झाड़फानूस, ईरानी कालीन, रोजवुड का शानदार फर्नीचर, क्या नहीं है उस कोठी में। इल्म ने दौलत को वश में कर रखा है। लक्ष्मी सरस्वती की चेरी है। अपने दफ्तर वाले कमरे में लाला बच्छराज बार-एट-ला, दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह छोटे-बड़े वकीलों और मुहर्रिरों से घिरे हुए हैं, अम्बरी तम्बाकू के मद्धिम कशों के सुरूर में बड़े-बड़े पेचीदा मसले चुटकियों में हल किया करते हैं। उनकी एक दिन की फीस दस हजार रुपया है। प्रदेश ही में नहीं अब तो देश में भी उनका नाम फैल रहा है। और इसीलिए अब वह क्रमशः राजनीति के क्षेत्र में भी कदम बढ़ाते चले आ रहे हैं। लाला बच्छराज को अपनी विशाल कोठी के अन्दर आगन वाले भाग तक भी कभी जाने का अवकाश नहीं मिलता। चाय बाहर, खाना

बाहर और गोल्फ के लिए भी अब तो उन्होंने वर्षों से अपने दफ्तर के बाहर वाले कामों को ही अपना लिया है। बेचारे को उतनी फुरसत भी नहीं मिलती कि अपने बच्चों के साथ कुछ समय बिता सकें। कम-से-कम साल, महीना और हफ्ता तो कर ही सकें। अभी दो-तीन महीने में जब उनका लिखा-पढ़ा प्रकाशित हो चुका है तब एकाध बार वे बच्चों के साथ ज्यादा अवसर अवश्य ही निकाल लेते हैं। यह अवसर बच्चों के लिए बड़ा उत्सवप्रद खासी ओकेजन होता है। मिसेज वत्सराज, जिन्हें अपने-आपको लेडी वत्सराज कहलाने का शौक है, अक्सर ही दिन में दो-तीन बार मेहमानों को चाय पिलाने या खिलाने के बहाने पति के सामने आ जाती हैं। वैसे लेडी वत्सराज को स्वयं भी बहुत कम अवकाश मिल पाता है। आजादी के बाद सरकारी सांस्कृतिक हलचलें बरसाती नदियों की बाढ़ जैसी हर तरफ फैली हैं, इस नगर में भी हैं। उनकी सहयात्री भी हैं और उनमें हर जगह किसी-न-किसी रूप में लेडी वत्सराज मौजूद रहती हैं। बच्चों के पालन-पोषण-शासन पर लेडी वत्सराज ने खास और खासा अध्ययन किया है। सरकारी दफ्तरों क्षेत्रों में तो कम-से-कम उनकी धाक जमी हुई है ही।

बच्चे पांच। बड़ा लड़का मनोज मजह बरस का है। सीनियर कैम्ब्रिज में पढ़ता है। दूसरा अनंग, मनोज से दो साल छोटा जूनियर कैम्ब्रिज में। फिर तीन लड़कियां हैं—रम्भा, मेनका, उर्वशी। सारे साहित्यिक नाम हैं। लेडी वत्सराज ने बड़ी मेहनत से सोच-सोचकर रखे हैं, क्योंकि उन्हें अपने पति के नाम से उतनी ही चिढ़ है जितनी कि पति को उसपर प्रीति है। इस विशाल कोठी में रहने वाले इस वत्सराज परिवार का एक अनिवार्य अंग बच्चों की गर्जियन ट्यूटर प्रेमा सोनी भी है। प्रेमा मम्मी की प्राइवेट सेक्रेटरी और पापा की चहेती बेटी-सी हो गई है। अब तो तिजोरी की चाबी तक कभी-कभी कई दिनों तक उसके पास रह जाती है। प्रेमा बचपन से ही अनाथ है। अपने मामा-मामी के घर पली, हठ से सरकारी छात्रवृत्तियों पर पढ़ी गोल्ड मेडेलिस्ट एम० ए० है। अपने लिए कहीं अध्यापिका की नौकरी चाहती थी। कोठी के केयरटेकर इसके मामा के कोई दूर नाते के

भाई-बन्धु लगते हैं, उनके बहाने किसी इन्टरमीडियेट कालेज की प्राध्यापिका होने के वास्ते लाला बच्छराज का सिफारिशी-पत्र लेने आई थी। केयरटेकर ने 'कबहुंक अम्ब औसर पाई' वाली नीति पर चलकर गृहपति की याचित कृपादृष्टि सिद्ध करने का काम गृहस्वामिनी को सौंप दिया। लेडी बच्छराज ने सिफारिश करने की फीस के तौर पर दिन-भर प्रेमा सोनी से अपनी संस्थाओं की चिट्ठियां लिखवाईं। लेकिन यही अवसर प्रेमा को भी अपने शील-व्यवहार और कर्मकुशलता से प्रभावित करने के लिए मिल गया। लेडी बच्छराज उसे पति से मिलाने के लिए शाम की चाय के समय गईं। संयोग से लाला बच्छराज उस दिन अकेले ही बैठे थे। उन्हें अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से आज ही अनंग तथा रम्भा वगैरह लड़के-लड़कियों की बदतमीजी की शिकायत मिली थी। पहले भी एकाध बार एकाउन्टेण्ट वगैरह ने लड़कों के अशिष्ट व्यवहार की शिकायतें उनसे की थीं। इसलिए पत्नी की बात समाप्त होते ही उन्होंने अपनी पत्नी को यही प्रसंग उठाकर लताड़ना शुरू कर दिया, "शीला, तुम बड़ी चिल्ड्रन स्पेशलिस्ट बनती हो और तुम्हारे ही बच्चे निहायत बदतमीज हैं। वे गुरुचरन बाबू, श्यामकिशोर जैसे लोगों तक से मामूली नौकरों के समान गाली-गुफ्तार-भरी बातें कर जाते हैं। अगर तुम इन्हें न संभाल सकीं तो मैं इन सबको होस्टलस में भरती करवा दूंगा।"

लेडी के तिल-तलुवों को आग लग गई, बोली, "तो मैं क्या करूं। आखिर इतना तो समझाती हूं। मेरी जैसी केयरफुल मदर बहुत ही कम होंगी। लेकिन आखिर बाहर का भी तो इतना सारा काम है।"

बैरिस्टर साहब ने छूटते ही उत्तर दिया, "बाहर का काम छोड़ दो। बच्चों की समस्या पर झूठ-मूठ के लेक्चर्स देने के बजाय उनकी देख-भाल करना अधिक बड़ी समाज-सेवा है।"

लेडी बच्छराज जल-भुन गईं। पति से बहस करने की ताब तो उनमें न थी पर मुंह का तोबड़ा लटकाकर उन्होंने यह अवश्य दर्शा दिया कि आगे और कुछ कहने पर वह बैठ [illegible]गी और बैरिस्टर साहब को

[illegible]

[illegible]

[illegible] का इन्तजाम देखकर मनोज अब [illegible] लिया गया है। [illegible] रही है। मन [illegible] के उबाल पर है। अपने सपनों की सार्थकता चाहता है। अपनी इच्छाओं के [illegible] के लिए उसे घर में ऐसा कोना ही नजर आता है। क्या हुआ जो यह मनोज

से छह-सात बरस बड़ी है। मगर कितनी सुन्दर है! नाम भी कितना प्यारा है 'प्रेमा'। मनोज आठों पहर उसीके ध्यान में रहता है और प्रेमा उसके इरादों को जानती है। दो-एक बार मनोज के छिछोरपन दिखाने पर उसने उसे समझाया भी, झिड़का भी। जब इससे भी काम न चला तो एक दिन हार कर मम्मी से बहुत ठण्डे तरीके से समझाकर शिकायत की। मम्मी को बहुत 'शाक' लगा। गम्भीरता से बोली, "जुविनाइल प्राब्लम बहुत नाजुक होती है। तीन-चार बरस के होश संभालते हुए बच्चे की तरह। मुझे समझ-बूझकर मनोज की इस आदत को सुधारने की कोई राह निकालनी होगी। वैसे तुम परेशान न होना इससे।" कहकर मिसेज बच्छराज फिर अपनी पालिटिक्स में व्यस्त हो गईं। उन दिनों मिसेज मिट्ठनलाल से उनकी घनघोर चल रही थी। भला बतलाइए, कल की रईस, अभी कार पर ठीक तरह से बैठने तक का तो शऊर आया नहीं और बैरिस्टर बच्छराज की पत्नी के विरुद्ध एक महिला संस्थान के चुनाव में पालिटिक्स भिड़ाने का दम दिखाने लगी। मिसेज मिट्ठनलाल ने मिसेज बच्छराज का उन दिनों नाकों दम कर रखा था इसलिए बच्चो-किशोरों के मनों की स्पेशलिस्ट नेत्री अपने नवयुवक लाडले की बुरी हरकतों के विषय में सब कुछ भूल गईं।

लेकिन अनाथ गार्जियन अध्यापिका प्रेमा क्योंकर भूलती, मनोज उसे भूलने न देता था बल्कि अपने जोश में उसकी बेहोश हरकतें बराबर बढ़ती जाती थीं। रात को दरवाजे खटखटाना, दरवाजे के ऊपर वाली झिलमिली खिड़की की छड़ें दोनों हाथों से पकड़कर लटकते हुए प्रेमा से द्वार खोलने की विनती करना तो हर रात की, रात-रात भर की हरकत ही हो गई थी, इसके अलावा उसने एक रात रेतीं और आरे की मदद से किवाड़ खोलने का प्रयत्न भी किया। एक दिन जब सुबह सब भाई-बहन प्रेमा के साथ नाश्ता कर रहे थे उस समय मनोज ने आकर प्रेमियों की गुटरगूं भाषा में उसके कान में अपना प्रार्थना-पत्र प्रेषित करना शुरू कर दिया। प्रेमा के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर वह बातें करने लगा। फिर बिजली की गति

से मन का बावलापन हाथ-बेहाथ होके फिसला ही था कि तड़ाक-तड़ाक् प्रेमा के दो थप्पड़ मनोज के बायें गाल पर ऐसे पड़े कि उंगलियां उभर आईं। प्रेमा आवेश में खड़ी हो गई। मनोज एकाएक सन्नाटा खींच गया। हाथ उठाकर सहज रूप से अपना चुटीला गाल सहलाने की उसकी प्रवृत्ति ही कुछ देर के लिए लुप्त हो गई थी। उसके लिए प्रेमा का यह व्यवहार सर्वथा अप्रत्याशित था। उसके छोटे भाई-बहन सब सन्न रह गए। सामने से आती हुई बेला आया भी सन्न। प्रेमा ने फिर तुरत अपने-आपको शान्त कर लिया और बैरिस्टर बच्छराज के बच्चों को अपना नाश्ता जारी रखने के लिए जहां तक बना मुसकराकर प्यार से कहा, "पप्पी तुम, मिनी तुम, विनोद तुम···" सब बच्चों को अलग-अलग नाम लेकर भी खाने के लिए प्रेरित किया; फिर आप भी आमलेट की तरफ झुकी। पीछे से गरजते स्वर में मनोज अंग्रेजी में बोला, "मैं मम्मी से कहूंगा कि मैंने तुम्हें पापा के साथ देखा था।"

प्रेमा का चेहरा तमतमा उठा। सोलह बरस की मिनी और चौदह बरस का विनोद अपने बड़े भाई की सूरत देखने लगे। दूसरे बच्चों के लिए बड़े भाई की चीखती आवाज़ ही एक अबोध सनाका भर देने के लिए काफी हो गई। निवाला मुंह में रखते हुए प्रेमा ने मिनी और विनोद से अंग्रेज़ी में कहा कि मनोज की बातों पर ध्यान न दो, वह तो पागल हो गया है। मनोज ने अपनी बात को दो बार, तीन बार, चार बार और चीखकर और चीखकर, और चीखकर दुहराया और तब तक दुहराता ही रहा जब तक कि उसकी आवाज़ थक न गई। तमाम नौकर-चाकर सुनते रहे। रईसों, बड़े आदमियों की कोठियों के नौकरों, आया, बैरा आदि लोगों को साहबों, मेमसाहबों और बाबा मिसियों की अंग्रेज़ी बानी सुनते-सुनते बात समझने का अभ्यास हो ही जाता है। सभीको इस बात से अचरज हो रहा था। नौकरों को बैरिस्टर साहब कीओर सेतो कभी कोई शक हुआ ही नहीं, हां, मेमसाहब के बारे में तो एक-आध ऊंची-नीची बात सुनी भी थी। वैसे प्रेमा मास्टरनी के बारे में भी इतने दिनों में कोई बेकायदे बात किसीके देखने

में नहीं आई थी। मनोज अपनी खिसियानी ज़िद मे हिटलरी प्रचार की ट्रिक के अनुसार एक झूठ को दस बार भूठलाता रहा। नौकरों के एक दल के मन मे विश्वास भी जमने लगा। सम्भव है, राजा भैया साहब ने दोनों को एक साथ देखा ही हो। प्रेमा ने जैसे-तैसे नाश्ता पूरा किया और उठकर अपने कमरे मे चली गई। उस दिन पापा और मम्मी दोनो ही अपने-अपने कामों से नगर के बाहर गए थे।

मनोज ने दिन-भर प्रेमा को तरह-तरह से तग किया। वह मुह से एक अक्षर भी न बोली। शाम के समय मनोज को दूसरी लहर चढ़ी, "मैं फांसी लगाकर मर जाऊंगा वरना तुम पापा से शिकायत करोगी। मगर मैं मम्मी के लिए चिट्ठी मे यह ज़रूर लिख जाऊंगा कि मैंने तुम्हे पापा के साथ देखा था।"

प्रेमा ने कुछ सोचकर मनोज से ऊपर के खाली कमरे मे चलने के लिए कहा। मनोज अपनी विजय पर खुशी से फूलकर ऊपर गया। प्रेमा ने जाकर दरवाज़े की कुण्डी बाहर से चढ़ा दी। प्रेमा ने बेला और रामवली दोनों ही आयाओं को बुलाकर मनोज की सारी बातें बतलाईं और मालिक-मालकिन के घर आने तक इस दीवाने की निगरानी रखने की अपील की। प्रेमा को रह-रहकर यही अचरज हो रहा था कि इतने बड़े आदमी के बेटे में तनिक भी ज़िम्मेदारी की भावना नहीं।

दूसरे दिन सुबह के अखबारों में मिस्टर और मिसेज़ बच्छराज दोनों ही के समाचार छपे थे। एक छोटे नगर की महिला-संस्था द्वारा चलाए जाने वाले बच्चो के स्कूल का उद्घाटन करते हुए श्रीमती बच्छराज ने कहा था, "माताओं को अपने बच्चों की नैतिकता को बराबर ऊंचा उठाए रखने के लिए अपने सुख-आराम, हर ज़रूरी काम का त्याग कर देना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय नैतिकता गिर गई है इसलिए हमको उसे उठाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करना चाहिए।"

बैरिस्टर बच्छराज एक बड़े शहर की अदालत मे एक बड़े आदमी के इकलौते नौजवान बेटे की तरफ से पैरवी करने गए थे। वह नौजवान एक

विधवा पर वलात् आक्रमण करने और घायल करने के अपराध में पकड़ा गया था और उसके मुकद्दमे का विवरण भी अखवार में छपा था। वैरिस्टर साहव ने एक जगह यह दलील पेश की थी कि नौजवानों और वच्चों के अपराध के लिए उनके माता-पिता, अध्यापकों—वल्कि पूरे समाज को दोषी करार देना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि वच्चे जान-वूझकर अपराध नहीं करते वल्कि अनजाने में ही उन भावनाओं से प्रेरित होते हैं जो उनके आसपास के वातावरण में प्रचलित होती हैं।

प्रेमा ने अखवार में अपने मालिक और मालकिन के विचारों को पढ़ा और उनके प्रकाश में अपनी और मनोज की समस्या पर विचार करने लगी।

दोपहर की ट्रेन से मम्मी घर लौट आईं और उसके दो घण्टे वाद पापा भी आ गए। मनोज के कैद किए जाने पर मम्मी अध्यापिका प्रेमा से वहुत नाराज थीं। उनका कहना था कि मनोज अपनी नादानी के कारण अगर थोड़ी-वहुत छेड़-छाड़ करना चाहता था तो प्रेमा उसे कर लेने देती, उसने उसे इतना उत्तेजित क्यों किया कि वह छोटे भाई-वहनों और घर के नौकरों-चाकरों के सामने प्रेमा से वदला लेने के लिए अपने पिता को वदनाम करने लगा। मम्मी ने इस गम्भीर दुर्घटना के वाद प्रेमा का अपने घर में रहना ठीक न समझा।

शाम को पापा के सामने मसला पेश किया गया। वह अपने वच्चे के नैतिक पतन के लिए अपनी पत्नी को दोषी ठहराने लगे। मा-वाप में तेज़ कहा-सुनी हो गई। मम्मी ने गुस्से में आकर पापा पर पक्षपात का दोष मढ़ते हुए उसख वर पर अपना विश्वास प्रकट किया जो मनोज ने क्रोध और कुण्ठा के वशीभूत होकर उड़ाई थी। अपने चरित्र को आंच से वचाने के लिए पापा ने भी प्रेमा को फौरन घर छोड़ने का आदेश दिया और घरेलू लड़ाई

के शोध में वह उसे सरकारी नौकरी दिलाने का अपना पुरान वचन भी भूल गए।

चारों ओर से हताश प्रेमा यह सोचने लगी कि अपनी न्याययुक्त किन्तु करुण स्थिति के लिए वह किसे दोष दे, मा-बाप को या बच्चे को ?

० ० ०

अमृतलाल नागर हिन्दी के
उन गिने-चुने मूर्धन्य लेखकों में हैं
जिन्होंने यद्यपि कम लिखा है
परन्तु जो भी लिखा है
वह साहित्य की निधि बन गया है
सभी प्रचलित वादों से निर्लिप्त
उनका कृतित्व और व्यक्तित्व
कुछ अपनी ही प्रभा से ज्योतित है
उन्होंने जीवन में गहरे पैठकर
कुछ मोती निकाले हैं
और उन्हें अपनी रचनाओं में
बिखेर दिया है
उपन्यासों की तरह
उन्होंने कहानियां भी कम ही लिखी हैं
परन्तु सभी कहानियां
उनकी अपनी विशिष्ट जीवन-दृष्टि
और सहज मानवीयता से
ओत-प्रोत होने के कारण
साहित्य की मूल्यवान संपत्ति हैं

मेरी प्रिय कहानियाँ

अमृतलाल नागर

६२३४

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-६

मूल्य : पांच रुपये (5.00)

पहला संस्करण 1970; © अमृतलाल नागर

रूपक प्रिटर्स, शाहदरा, दिल्ली, में मुद्रित

MERI PRIYA KAHANIYAN (Short Stories) by Amritlal Nagar

6228

भूमिका

सैंतीस वर्ष पहले मेरी पहली कहानी प्रकाशित हुई थी। उसके लगभग दो तीन वर्ष पहले ही से मैं कहानियां लिख-लिखकर इधर-उधर भेजने अवश्य लगा था परन्तु वे प्रकाशित होने का सौभाग्य लाभ न कर सकीं। उन आरंभिक रचनाओं की पाण्डुलिपियां भी अब सुलभ नहीं; केवल स्मृति में यह संस्कार शेष है कि उनमें कुछ कहानियां मुझे बहुत अच्छी लगी थीं। उन प्रारंभिक कहानियों में 'समाज-सुधार' और 'राष्ट्रीयता' का गहरा पुट था, यह मुझे याद है। उनके प्रकाशित न होने पर कुण्ठावश चाल बदलकर चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' और जयशंकर प्रसाद की भाषा-शैली अपनाई। किन्तु उसमें भी कोई जस मेरे हाथ न लग सका। सन् १९३४ में 'माधुरी' पत्रिका में कुछ कहानियां प्रकाशित होने से मेरे लिए साहित्य के स्वर्ग द्वार का 'सम-सम' खुल गया। एक बार छपने का क्रम आरंभ हो जाने पर मेरी कुछ एक 'हृदयेश-प्रसाद' शैली वाली पूर्व तिरस्कृत कहानियां भी छप गईं। उस समय वे मुझे बहुत प्रिय लगती थीं किन्तु आज मेरे मन में उनके लिए कोई जगह नहीं है।

अगस्त सन् १९३५ ई० में मेरा पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। उसकी एक प्रति सम्मत्यर्थ प्रेमचन्द जी की सेवा में भेजी। उनका पत्र भी पाया। वाटिका के फूलों की खुशबू तो उन्हें अच्छी लगी पर साथ ही यह

भी लिखा, "मैं तुमसे 'रियलिस्टिक' कहानियां चाहता हूं।" कलकत्ते में शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के दर्शन करने पर उनसे भी यही मंत्र मिला था कि जो लिखो वह अपने अनुभव से लिखो लेकिन इन दोनों ही महान लेखकों के उपदेश मन में चकफेरी लगाते रहने के वावजूद तव तक अपना कोई केन्द्र स्थापित न कर पाए थे। डिक्शनरियों से कठिन शब्द खोज-खोज कर कवित्वमय कथाशैली में उनका प्रयोग करने में ही अपनी शान समझता रहा। मुझे याद है प्रेमचन्द का पत्र पाने के तुरन्त वाद ही मैं एक वैसी ही महान लघु कथा लिखकर उसे 'माधुरी' संपादक स्व० पं० रूपनारायण जी पाण्डेय की सेवा में ले गया। कहानी पर नज़र डालकर पाण्डेय जी अपने सहज मीठे ढंग से वोले, "भैया, तुम वहुत विद्वान हो गए हो, अव तुम्हारी कहानियों के नीचे फुटनोट लगाने पड़ेंगे।"

उस कहानी के अस्वीकृत हो जाने के वाद मेरा मन वैठ गया। पांच-छः महीनों तक फिर एक अक्षर भी न लिख सका; हां, इस वीच में मोपासां, चेखव आदि पश्चिमी लेखकों की कहानियां खूव पढ़ीं। मोपासां की कुछ कहानियों का अनुवाद भी किया। उस अनुवाद के दौर में भी मेरी वह छायावादी शैली पूरी तरह से छूट न पाई थी। सन् ३६ में किसी समय मेरे लेखन का एक नया दौर आरंभ हुआ। 'शक़ीला की मां' लिखकर मुझे यह लगा कि इसमें शरत्चन्द्र और प्रेमचन्द के अनुभव और रियलिज़म वाली शर्तों की पूर्ति के साथ ही साथ सहज वोलचाल की भाषा में कहानियां लिखने की पाण्डेय जी वाली शर्त भी पूरी कर दी है। कहानी मुझे और मेरे मित्रों ही को नहीं वरन् स्व० निराला जी को भी वहुत पसन्द आई थी किन्तु दुर्भाग्यवश उसे प्रकाश कहीं न मिला; न 'माधुरी' में, न 'हंस' में, न और कहीं। सन् ३७ में अपना साप्ताहिक पत्र 'चकल्लस' निकालने पर मैंने उसे स्वयं ही प्रकाशित किया था। छपने पर उस ज़माने के नये लोगों ने उसे वहुत सराहा। लखनऊ के एक वंगाली नवयुवक ने उसका अनुवाद भी किया था। पता नहीं उनकी वह मेहनत किसी वंगला पत्र-पत्रिका में सफ़ली-भूत हुई थी या नहीं पर अपने अनुवाद की एक प्रतिलिपि जो वकलम

शुद्ध लिखकर वे मुझे अर्पित कर गए थे आज भी मेरे पास सुरक्षित है। 'सकीना की मां' कहानी मुझे आज भी प्रिय है और इस संग्रह में अपने विकास की उस पहली मंजिल को मैं पहला स्थान ही देता हूं।

इस संग्रह के विषय में यह दावा तो हरगिज नहीं कर सकता कि इसमें मेरी सभी प्रिय कहानियां संकलित हो गई हैं फिर भी सन् ३६ से सन् ६२-६३ के काल में लिखी गई मेरी हर रंग की कहानियों का प्रतिनिधित्व इस संग्रह में अवश्य हो जाता है। अपनी इन रचनाओं के शिल्प आदि के सम्बन्ध में स्वयं चर्चा करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। हां, यह अवश्य कहना चाहता हूं कि मेरी यह रचनाएं जीवन के यथार्थ-बोध से निःसन्देह जुड़ी हुई हैं। और इन कहानियों का शिल्प इनमें निहित बातों से ही उमगा और संवरा है। मैंने शिल्प के लिए ही शिल्प का मंत्र आज तक नहीं साधा। इधर कुछ वर्षों में मैंने प्रायः एक भी कहानी नहीं लिखी। इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य के आलोचकों ने मेरी कहानियों का कोई विशेष नोटिस नहीं लिया। कारण जो भी हो पर यह स्थिति मेरे सृजनशील मन को कहानियां रचने लायक प्रफुल्लित नहीं कर पाती। पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा मुझसे अब भी कहानियां मांगी जाती हैं पर 'सिर्फ आर्डर सप्लाई' के लिए ही लिखना मुझे अच्छा नहीं लगता। जो, हो राजपाल एण्ड सन्ज़ ने मुझसे यह कथा-संग्रह मांगकर मेरी रूठीली अहंता को जो मरहम लगाया है उसके लिए उनके प्रति धन्यवाद प्रकाश करता हूं।

चौक, लखनऊ
१२-१-१९७०

—अमृतलाल नागर

6234

क्रम

शकीला की माँ	९
कादिर मियाँ की भौजी	२०
गोरख-धंधा	३२
धागे के टुकड़े	४४
एटम बम	५०
मूंगी नदिया	५९
एक दिल हजार दास्ताँ	७३
धर्म-संकट	१००
मोती की सात बहनिया	११०
आदमी—जाना अनजाना	१२४
माँ-बाप और बच्चे	१३९

केले और अमरूद के तीन-चार पेड़ों से घिरा कच्चा आगन। नवाबी युग की याद में मर्सिया पढ़ती हुई तीन-चार कोठरियां। एक में जमीलन, दूसरी में जमनिया, तीसरी में शकीला, महबूबी, मुहम्मदी। यह 'उड़ते पर वालों' के ठहरने की सराय थी।

एक दिन जमीलन की लड़की शकीला, दो घंटे में अपनी मौसी के यहां से लौट आने की बात कह, किसी के साथ कहीं चल दी। इसपर घर में जो चखचख और तोबा-तिल्ला मचा, उसे देखने में लोगों को बड़ा मज़ा आता। दिन-भर बाज़ार के मनचले दुकानदारों की ज़बान पर शकीला की ही चर्चा रही और, तीसरे दिन सवेरे, आश्चर्य-सी वह लौट भी आई। लोगों ने देखा—कानों में लाल-हरे नग-जड़े सोने के झुमके, 'कामदानी' रंग का चुनरी, गोटा टका रेशमी कुरता और लहंगा।

घर की चौखट पर पैर रखते ही सहमे-सहमे, मुहम्मदी ने थोड़ा मुस्करा-कर, उसकी ठोड़ी को अपनी उंगलियों की चुटकी से दबाते हुए पूछा, "ओ-हो-री लाडो बीबी, दो दिन कहां रहीं?"

शकीला केवल मुस्कराकर आंखें झुका गई।

हमदम मिर्ज़ा की दाढ़ी में तिनके दाग हैं, अथवा उनकी मुस्कराहट ओर का बदन छिपाया है, यह तो आपकी बहुताई ही बता सकेंगे। हु.

उनका सिन इस समय पचास-पचपन के करीब होगा, यह आसानी से जाना जा सकता है। एक दिन जब आप खुदा के नूर में खिजाब लगाकर शकीला से हंस-हंसकर कुछ फरमा रहे थे, तब शहजादी ने उनके जवान दिल पर कितनी बार थूका था, मुहम्मदी इसकी गवाह है।

चारपाई पर बैठे-बैठे पंखा झलते हुए मियां झब्बन ने शकीला को देखा। दाढ़ी-मूंछों के काले-सफेद बालों में एक बार बिजली-सी चमकी। फिर कहा, "आह-हाय, यह गज़ब। यह ठाट!! कहां चली गई थीं तुम?"

चुनरी से सिर को अच्छी तरह ढककर कनखियों से देखते हुए शकीला ने कहा, "कानपूर।"

शहज़ादी ने वैसे ही कोठरी के बाहर आकर देखा, शकीला। मुंह बिचकाकर, दोनों हाथों को सहज ढील पर छोड़ते हुए बोली, "ऊ-हूं! अब तो बेगम साहिबा के कदम क्यों ज़मीन पर पड़ेंगे? हां भई, यार लोग सलामत रहें, चलो अच्छा है।…लेकिन कहे देती हूं, मेरे घर यह छिनाला नहीं चलेगा, हां!"

शकीला पर जैसे गाज गिर गई। पत्थर की मूर्ति की तरह, जैसे खड़ी हुई थी, वैसे ही रह गई।

शहज़ादी का अंग-अंग, उस समय, फड़क-फड़ककर एक अजीब दृश्य उपस्थित कर रहा था—हाथ कभी इधर, कभी उधर, आंखें कभी पृथ्वी और कभी आकाश की ओर। चालीस से कुछ ऊपर का सिन। घर की चहारदीवारी के अन्दर सिर पर दुपट्टा डाल लेने की कोई ज़रूरत थी ही नहीं। फिर झब्बन मियां को लुभाना भी न था—शायद इसीलिए वह 'बाडी' नहीं पहनती और मैले कुरते के सब बटन भी खुले ही रहते हैं। पान के कत्थे से रंगीले ओठ रसीले हैं या नहीं, इसे झब्बन मियां बता तो सकते थे, परन्तु वे आज तक किसी भी अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे आदमी के पास बैठे तक नहीं। फिर भी, उन रसीले ओठों से बात करते समय हमेशा 'पराग' बिखरता है, इसे तो बहुत लोग जानते हैं। शहज़ादी कह रही

थी, "हं, कभी हमारे भी जवानी के दिन थे, हमने भी जमाना देखा है, लेकिन, यह दिन और यह सितम—ऐसी जवानी पर खुदा की मार !"

अपनी कोठरी के सामने वाले दालान में चारपाई पर बैठी हुई जमीलन रोटी खा रही थी। शहजादी के बयान से उसे शकीला के आने की सूचना मिल चुकी थी, फिर भी वह उठी नहीं, चुपचाप सुनती ही रही।

और शहजादी बिना रुके ही कहे जा रही थी, "मुई के मिजाज तो देखो। ऊन्हू, यह ठसका ! जैसे हजार दो हजार कमा लाई हो। अल्लाह ने जरा सूरत दी होती तो जमीन पर पैर ही न पड़ते। उफ री नजाकत !" मुंह बिचकाकर, गाल पर उंगली रख, आंखें चढ़ाते हुए उसने इस अन्दाज में गर्दन मटकाई कि…खुदा की पनाह।

सहनशीलता की भी एक हद होती है। यह ठीक है कि शकीला के भाग जाने पर जमीलन ने 'परवरदिगार' से उसकी मौत मांगी थी, लेकिन आज अपनी आंखों के सामने अपनी लड़की के लिए इतनी तीखी बातें सुनने को वह हरगिज तैयार न थी। मुंह का कौर जो बहुत देर से दांतों का अत्याचार सहन कर रहा था, आधे लोटे पानी के सहारे पेट में पहुंच गया। जमीलन ने दालान से बाहर आकर आवाज दी, "शकीला ! चल, इधर आ।"

किसी स्वप्न को देखते-देखते शकीला जैसे चौंक-सी उठी। मां की आवाज सुनकर उसने अपने को संभाला और फिर अपनी कोठरी में चली गई।

आग दोनों तरफ बराबर सुलग रही थी। शहजादी अभी कुछ और कहना चाहती थी, और जमीलन का दिल भी अन्दर ही अन्दर घुमड़ रहा था। आखिर जमीलन से न रहा गया। अपने-आप ही 'किसी' को सुनाकर कहने लगी, "जिन्दगी-भर दुअन्नी-चवन्नी पर कलमा पढ़ा की, अब किसी की बढ़ती देखकर आंखें फटती हैं ? वाह रे जमाना, बुरा हो तेरा।"

"ऐ, तो ज़माने कोक्या कोसती हो ? मुझे कोसो, मुझे। है हिम्मत ?" शहज़ादी फट पड़ी।

"मैं क्यों किसीको कोसूं ?—मुझे गरज़ ? तुम्हें क्यों चिनगी लगती है ?"

"है-है, लगे नहीं। लेके कोस डाला—बुरा हो, बुरा हो—वाह।"

"और मेरी आंखों के सामने घंटा-भर से जो तुम मेरी लड़की को कोस रही थीं, वह कुछ नहीं। ··दिन-भर बहन-बहन कहो, वह मौसी-मौसी रटे, और मौसी मुई जब देखो तब कोसा-काटी। ऐसी मौसी के मुंह में आग। बड़ी मौसी···"

जमीलन की बात अभी पूरी न हो पाई थी कि शहज़ादी लपककर उसके पास जा खड़ी हुई, "ले, रख आग, ले रख, रख ना ? मुई छिनाल, रंडी, बदज़ात···।"

शहज़ादी हांफ रही थी।

"और तुम कौन हो ? दूसरे को तो रंडी, छिनाल, बदज़ात और आप बिचारी बड़ी पाक-साफ हैं न ? वह दिन भूल गईं बीबी, जब कम्पनीबाग में अपने चहेते के साथ पकड़ी गई थी ? रह तो आई हो तीन दिन तक हवालात में। मुई दो कौड़ी के सिपाहियों ने दुर्गत कर तो दी थी···? नहीं, अब वह भूल गईं। अपनी वाली कैसे कहे ?"

"हां-हां, मेरे तो दो कौड़ी के सिपाही थे, तेरे यार तो बड़े लाट के बच्चे थे ?"

"थे ही, और ले ही आए मेरी ज़री से इशारे पर तुझे छुड़ाकर। वरना मर जाती ज़िन्दगी-भर जेल में चक्की पीसने-पीसते।"

'ऐं, कौन किसका खून किया था, डाका डाला था जो ज़िन्दगी-भर जेल में पड़ी रहती ? बड़ी आई छुड़ाने वाली- कुत्ती कहीं की ?"

जमीलन के तन में आग लग गई। लपककर शहज़ादी की गर्दन नापी। सब लोग बचाने के लिए 'हैं-हैं' करते हुए दौड़ पड़े। जमीलन उसका गला छोड़कर अपने दालान में चली आई।

दोनों हाथों को बार-बार ऊपर की ओर उठाकर, चिल्ला-चिल्लाकर, शहज़ादी कहने लगी, "अल्लाह करें, आधी रात में इसकी लाश मचमचाती हुई निकले। अल्लाह करें, इसके तन-तन में कीड़े पड़ें। अल्लाह करे···"

और फिर अपनी असमर्थता को पछाड़ने के अन्तिम प्रयत्न में वह ढह गई। मियां क्षब्बन ने लपककर चारपाई से पंखा उठाया और उसके सिर को अपनी गोद में रखकर पंखा झलने लगे।

जमीलन खाना खाने बैठी, पर उससे ठीक तरह से खाया नहीं गया। थाली एक ओर सरकाकर गडुए से हाथ धोते-धोते उसने आवाज़ दी, "शकीला!"

शकीला अपनी कोठरी से निकलकर चुपचाप उसके पास खड़ी हो गई। जमीलन ने पानदान को अपनी ओर खिसकाकर उसका ढक्कन खोलते हुए पूछा, "गई कहां थी?"

"कानपुर"···चारपाई के एक कोने का सहारा लेकर पायताने की डोरी पर हाथ फेरते हुए सिर झुकाए उसने उत्तर दिया।

"किसके साथ गई थी।"

"मुन्ना के साथ।"

"कौन मुन्ना?"

"रामलाल का लड़का।"

"रामलाल कौन? सराफ़े वाले?"

इस बार मां की आंखों से आंखें मिलाकर शकीला ने उत्तर दिया, "वह नहीं। अरे वही सुनार, सब्जी मंडी वाला।"

पेशानी पर बल डाल, आंखें चमका, बात समझते हुए जमीलन ने कहा, "हूं"।

और फिर पान पर कत्था लगाने लगी।

शकीला चुप बैठी थी।

पान के बीड़े मुंह में दबाकर दामन से हाथ पोंछते हुए जमीलन ने पूछा, "मिला क्या ?"

शकीला ने कमर से रेशमी बटुआ निकालकर दस-दस के दो नोट मां की हथेली पर रख दिए।

मुट्ठी में नोटों को दबाते हुए कोमल स्वर में जमीलन ने कहा, "तो कहके क्यों नहीं गई थी ?"

शकीला सिर झुकाकर चुप-चाप बैठी रही।

थोड़ी देर बाद जमीलन स्नेहपूर्वक बोली—"अच्छा जा। कपड़े बदल। मैं बजार से पूड़ी मंगाए देती हूं।" जमीलन उठी और गली में आकर खड़ी हो गई, पूड़ी मंगाने के लिए वह किसी परिचित को खोज रही थी। संयोग-वश मियां बुलाकी थोड़ी देर बाद उधर से निकले। अदा के साथ मुस्कराते हुए बुलाकी मियां ने कहा, "किसका इंतज़ार हो रहा है ?"

"तुम्हारा ही," जमीलन ने ज़रा मुस्कराकर उत्तर दिया।

"ओफ, ओह! खुदा के लिए इतना झूठ न बोलो तो क्या हो जाए ?"

"अपनी जान-कसम, झूठ नहीं। सोच रही थी, इधर से कोई आता-जाता दिखाई पड़े। सकीला भूखी बैठी है, बजार से पूड़ी मंगानी थी। ज़री तुम्हीं ले आओ लपक के।"

"अकेली गली में खड़े-खड़े मूछों पर हाथ फेरते हुए तृषित नेत्रों से उसने एक बार जमीलन की ओर ताका और फिर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "बोलो क्या मंगाती हो ? लाओ, ले आऊं ?"

जमीलन ने अठन्नी का नुस्खा बतला दिया। बुलाकी मियां जाने लगे। जमीलन ने पुकारकर कहा, "अरे, पैसे तो लेते जाओ।"

पीछे की ओर गर्दन घुमाकर मियां बुलाकी चलते-चलते बोले, "रख लो, फिर काम आएंगे।"

उसी दिन शाम को जमीलन ने शकीला को मारते-मारते अधमरी कर डाला। बड़ी मुश्किल से मुहम्मदी उसे बचा सकी। मियां झब्बन अलग से

ही आंसू-भरी आंखों से उसे देखते रहे। शकीला रो-रोकर कह रही थी, "हाय मरी, हाय मरी।" जमीलन घूंसों और थप्पड़ों से उसकी पूजा करती हुई हांफ-हांफ कर कह रही थी, "जा, जा न और जाएगी?"

मुहम्मदी अपना पुरजोर शक्ति से जमीलन को पीछे ढकेलती हुई कह रही थी, "अरे बस-बस। बहुत हुआ। छोड़ दो उसे। अब मत मारो।" और शहजादी ने दूर ही से हाथ और आंखें नचाकर धीरे से कहा, "वाह रे जोम! तोबा हो, तोबा रे तोबा," कहकर उसने अपने गालों पर धीरे से चपत मारकर कान उमेठ लिए।

शकीला का अपराध दंड को देखते हुए बहुत कम था। बात यह थी कि शकीला ने शाम के वक्त जाकर शहजादी से बड़े सहजे के साथ कहा, "मौसी, आज पान नहीं खिलाओगी?"

आए दिन होने वाली कलह और सुलह की तरह शकीला ने आज भी सन्धि हुई जान ली थी। पर शहजादी उस दिन बेहद चिढ़ी हुई बैठी थी। इसीसे उसने शकीला को हजारों जली-कटी बातें सुनाई।

जमीलन का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। शीघ्रतापूर्वक आकर शकीला को घसीटती हुई अपनी कोठरी की तरफ ले गई, "ले और जाएगी? ले-ले।" धम-धम-धमाधम...शकीला फिर खूब पीटी गई।

मुहम्मदी के बीच-बचाव करने से छुटकारा पाकर जोर-जोर से सिसकती हुई शकीला अपनी कोठरी में चली गई और जमीलन हांफते-हांफते अपनी चारपाई पर।

रात के आठ बजे किसीने दरवाजे पर थपकी दी। जमीलन चारपाई से उठकर चटर-चटर चप्पलें चटकाती हुई गई और कुंडी खोलकर देखा - मुन्ना।

"आइए, आइए," मुस्कराने का निष्फल प्रयत्न करते हुए जमीलन ने उसका स्वागत किया। ज़रा-सी बात पर शकीला को कितना मार—रह-रहकर उसे इसीका ध्यान हो आता था।

मुन्ना ने पूछा, "शकीला कहां है?"

"अभी बुलाती हूं। आप ऊपर तशरीफ रक्खें।"

ऊपर छत पर एक काठ का छोटा-सा कमरा था—वही उसकी रूप की दूकान थी।

मुन्ना को ऊपर के कमरे में बैठाकर उसने नीचे आकर शकीला की कोठरी के किवाड़ों को थपथपाया।

"सकीला, अरी सकीला ! ज़रा कुंडा खोल तो विटिया !'

शकीला ने कोई उत्तर न दिया।

"अरी मुन्ना बाबू आए हैं ?"

किवाड़ तब भी बन्द रहे। बड़ी देर बाद मां के बार-बार मिन्नत करने पर उसने कुंडी खोल दी।

उसके सिर पर प्रेम के साथ हाथ फेरते हुए उसने कहा, "क्यों गई थी उस जल-मुंही, मरी-पीटी के पास ?"

शकीला तकिये में मुंह छिपाए ज़ोर-ज़ोर से सिसकने लगी। जमीलन भी रो पड़ी। "तुझे मेरे सिर की कसम। अब न रो मेरी बिटिया। उठ तो मेरी रानी। उठ, उठ।" थोड़ी देर बाद अपने को सम्भालकर जमीलन ने उससे कहा और हाथ पकड़कर उसे उठाना चाहा।

अपनी छाती से शकीला को कसकर जमीलन रोने लगी, और शकीला भी। सिसकियों और आंसुओं के बीच जमीलन ने कहा, "अल्लाह करे मेरे ये हाथ गल जाएं। मेरी बेटी, मेरी बच्ची !" वह उसके मस्तक को दोनों हाथों से अपनी छाती पर कसकर दबाए हुए थी।

मुहम्मदी ने कोठरी के द्वार पर खड़े होकर उस दृश्य को देखा और फिर जमीलन से कहने लगी, 'पहले तो ले के पीट डाला, और अब फफड़-दलाली करने चली है, वाह री मौसी ? ऐसे मना रही हो, अल्लाह कहीं सचमुच ही तुम्हारी बांहें न काट डाले "

"···शकीला ! चल उठ,हाथ-मुंह धो। रहने दे अब अपने नखरे। चल-चल। यह चोंचलेबाज़ी ऊपर जाकर दिखाना। दो-एक झुमके और मिल जाएंगे। सुनार का बेटा है कि बातें।"

मुहम्मदी ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया। वह

मुस्करा रही थी, सूजे-से जलमग्न नेत्रों से उसकी ओर देखकर शकीला भी एक बार मुस्करा दी।

मुहम्मदी की मदद से हाथ-मुंह धोया, साड़ी बदली, पान खाया और ऊपर चली गई।…और ऐसे ही सारी रात बीत गई। सुबह उठकर मुन्ना ने देखा, शकीला बिस्तर पर न थी। उसने जमीलन से पूछा। शकीला को आवाजें दीं, मुहम्मदी से पूछा, छब्बन से पूछा, शहजादी से भी पूछा। शकीला कहीं भी न थी। एकाएक उसने देखा, ड्योढ़ी की अर्गला तो खुली थी, पर किवाड़ें भिड़े हुए थे। दोनों हाथों से अपना कपाल पीटकर वह रो पड़ी।

शकीला सचमुच फिर भाग गई थी।

एक दिन, दो दिन, दस दिन, महीना, डेढ़ महीना—कुछ पता नहीं। जमीलन के लिए धरती जैसे उसकी शकीला को निगल ही गई थी। वह दरोगा जी की खिदमत में गई, 'हवलदारों' की पाशविक मनोवृत्तियों की छाप अपने गालों और…और अवनत स्तनों पर लगाकर लौट आई। परन्तु शकीला न आई, न आई।

जवानी की कमाई की बची-खुची स्मृतियों को एक-एक कर उसनेबेचा और खा डाला। अच्छा भोजन किया, दिन में चार बार सिंगार करना शुरू किया। मुहम्मदी को अकेले में बुलाकर जमीलन कहती, "अरी मेरी चोटी तो कस दे, मेरी गुड़िया। आय-हाय, आज तो तू बड़ी खूबसूरत जच रही है।"

बात समझकर मुहम्मदी जमीलन का जूड़ा बांधते-बांधते कहती, "लेकिन मौसी, तुमसे कम ही कम। गजब ढाती हो तुम तो। सारा बाजार तुम्हें देखता है घूर-घूरकर, जैसे कोई हूर खड़ी हो?"

'ए चल हट, मुई! तुझे बातें बनाना खूब आता है।' मन ही मन प्रसन्न और गर्वित हो जमीलन उसे उत्तर देती।

दिन चुपचाप यों ही बीत रहे थे। जमीलन बड़े सजाव के साथ बाजार के आने-जाने वालों को देखती। बहुत-से उसे भी देखते, परन्तु आता उसके यहां कोई भी न था।

एक दिन मुहम्मदी भी कहीं चली गई—तीन दिन के लिए। जमीलन

के लिए वे दिन कयामत के दिन थे।

सुनसान गली में खड़ी हो आंखें फाड़-फाड़कर जमीलन जैसे कुछ खोज रही थी। बाज़ार में जाते हुए मुन्ना को उसने देखा। वह दौड़ी हुई गई मुन्ना को बुलाने। वह भी उधर ही आ रहा था।

मुन्ना ने पूछा, "शकीला आ गई?"

"सकीला गई भाड़ में! उससे तुम्हें क्या मतलब?" कह उसने मुन्ना का हाथ पकड़ लिया और घर में ले गई।

चारपाई पर उसे बिठाकर बोली, "तुम तो अब आते भी नहीं, क्यों?"

"क्या करूं? किसके लिए आऊं?" मुन्ना जमीलन को यह दिखाना चाहता था कि उसे शकीला से कितना अधिक प्रेम था और अब भी बाकी है।

कटीली कनखियों से देखते हुए उसका हाथ अपने हाथ में दबाकर उसने कहा, "क्यों? क्या मैं खूबसूरत नहीं हूं? बोलो, प्यारे बोलो!"

फिर दोनों हाथ सिर के पीछे बांध, छत की कड़ियों की ओर देखते हुए झूमकर गुनगुनाना शुरू किया :

"क्या इश्क ने समझा है,
क्या हुस्न ने जाना है!
हम खाक़-नशीनों की,
ठोकर पै ज़माना है!"

गाकर उसने एक बार मुन्ना की ओर देखा और फिर हंस पड़ी। उसके पास सरक, अंगड़ाई लेते हुए उसने पूछा, "आज चुप क्यों हो, मेरी जान?"

मुन्ना अचकचा उठा। वह क्या बताए कि वह चुप क्यों है? कुछ देर बाद जमीलन ने फिर पूछा, "हमसे कुछ खफा हो?"

मुन्ना ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "नहीं तो, भला तुमसे कौन खफा हो सकता है? हां, यह तो बताओ कि आज घर में और सब कहां हैं?"

जमीलन ने मुंह फुलाकर आंखें तरेरते हुए हाथ से मुन्ना को धीमा-सा धक्का देकर कहा, "तुम्हें दूसरों से क्या मतलब? ऐ, हां, तब से हज़ार बार पूछ चुके हो, सकीला कहां है, फलानी कहां है, ढिमाकी नहीं दिखाई

पड़ती ? कोई तो आप पर जान दे और आप ऐसे कि···?"

मुन्ना चुपचाप बैठा हुआ उसकी ओर ताक रहा था। जमीलन कुछ देर चुप रही, फिर कनखियों से देखते हुए मुस्करा पड़ी।

वह मुन्ना के और पास खिसक आई, खिसकती ही आई और उसकी गोदी में अपने-आप को बिलकुल ढीला छोड़ दिया।

मुन्ना अजब उलझन में पड़ा। वह जमीलन से पीछा छुड़ाना चाहता था। उसने कहा, "अच्छा, इस वक्त जाने दो। मुझे काम है। फिर आऊंगा।"

मुन्ना अपने को अलग करने की कोशिश करने जा ही रहा था कि जमीलन ने उसे अपनी ओर खींचकर अपनापन जताते हुए कहा, "यह भी जाने का कोई वक्त है ? नहीं, अब न जाने पाओगे।"

जमीलन की सारी चेष्टाएं मुन्ना को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न कर रही थीं। उत्साहित होकर वह अपनी एक-एक अदा से, बचपन से लेकर अब तक आज़माए हुए प्रयोगों से, उन्मत्त होकर मुन्ना को रिझाना चाहती थी। उस वक्त उसकी बांकी अदा में कितना बांकपन था, कितना मज़ा था, कितना···!

मुन्ना सचमुच में घबरा उठा था।

आखिर उससे न रहा गया। अपनी पूरी ताकत से जमीलन को ढकेल कर भागा—भागा।

जमीलन दूर जा पड़ी। समूची शक्ति लगाकर उठना चाहा, पर उठ न सकी, वहीं ढह गई। अकर्मण्य रोष घुमड़-घुमड़कर उसके अंग-अंग को जैसे उमेंठ रहा था। होंठ बार-बार फड़फड़ाकर रह जाते थे, मानो कह रहे हों, "शकीला, आ जा बेटी, आ जा।"

जैसे उसकी दोनों बाहें टूट गई थीं, मुहम्मदी भी नहीं, शकीला भी नहीं; और वह भूखी थी।

(१९३६ ई०)

कादिर मियां की भौजी

असाढ़ की एक शाम [illegible] पान चबाते झूमते हुए, [illegible] मियां कादिर ने आवाज दी, "अरी भौजी !"

भौजी अपनी कोठरी के सामने फुटपाथ पर चारपाई डालकर लेटी हुई [illegible] से बातें कर रही थी। कादिर ने फिर कहा, "अरे, सो गई हो? तुम्हें क्या हुआ है?"

इस बार भौजी ने कादिर की ओर मुंह फेरकर कहा, "अरे क्या है? घण्टा-भर से भौजी-भौजी चिल्ला रहे हो, कुछ कहो भी ?"

ओठों में ही धीरे-धीरे मुस्कराकर मियां कादिर ने कहा, "ओ, आज तो तुम बड़ी खूबसूरत लग रही हो ! नवाब भाई कहां गए ?"

भौजी ने पंखा झलते हुए बड़े इत्मीनान के साथ कहा, "वह तो आज शाम को कानपुर गए हैं।"

"तब फिर यह सिंगार किसके लिए हुआ है ?"

"तुम्हारे लिए।" भौजी ने मुस्कराकर तिरछी चितवन से उसकी ओर ताककर कहा।

"अरे, हम तो तुम्हारे ऊपर ऐसे ही फिदा हैं—सौ जान से कुर्बान !"

भौजी ने जरा लज्जा का भाव दिखलाते हुए कहा, "चलो भई, कलेजे

को ठंडक पडी। मैं तो समझती थी कि इस बुढ़ापे में अब···" बात काटकर मियां कादिर ने लहजे के साथ कहा, "जब बुढापे में यह हाल है, तब जवानी में खुदा जाने क्या कैफियत रही होगी! अच्छा भौजी, तुमने कभी इश्क भी किया है?"

"न भाई तुम ऐसा कोई आसिक ही न मिला था तब!"

मियां कादिर आसमान की तरफ देखते हुए चुपचाप पंखा झलनेलगे।

एक मिनट के बाद भौजी ने कहा, "सो गए क्या?"

कादिर मिया एकदम चौंककर बोले, "कौन मैं—और सो गया? अरे, लाहौल पढो, भौजी! इतने दिन तो तुम्हें भी यहां रहते हो गए। भला, कह तो दो जो किसी दिन भी दो बजे से पहले सोया हूं तो···?"

महज मजाक के लिए जरा चुटकी लेते हुए भौजी ने कहा, "बस, रहने भी दो। कच्ची नींद में पड़े ही हुए थे! अभी मैं जो जरा दो मिनट और आवाज न दूं, मिया कादर हुसैन खर्र-खर्र करते होते।"

"अमां, हम तुमसे कहते हैं कि सो नहीं रहे थे। चाहे कसम ले लो। जरा एक बात सोच रहे थे हम तो, और आप कहती हैं कि सो गए—अरे वाह, भौजी!"

"ऐ, तो ऐसा क्या सोच रहे थे?"

"यही, जरा इश्क के मामले की बात थी।"

भौजी ने मियां कादिर की तरफ करवट ले ली। कहा, "क्या किसीसे इश्क पैदा किया है?"

मिया कादिर ने मुस्कराकर कहा, "कह तो दिया कि तुमसे।"

भौजी झेंप गईं, पर चूकी नहीं। जवाब दिया, "अरे, हमसे तो तुम्हारी पुरानी आसनाई है। हमने तो समझा था कि तुम्हारे नवाब साहब की महरी अब्बासी···"

मिया कादिर ने धीरे से कहा, "अमां चुप भी रहो। तुम तो बस मजाक करके छूट जाओगी, और यहा सबेरे खाने तक के लाले पड़ जाएंगे। हम तो कह रहे थे कि आजकल हमारे नवाब साहब जरी आसिक मिजाज

हो गए हैं।"

हाथ ऊंचा उठाकर उसके सहारे सिर टिकाते हुए भौजी आगे की ओर ज़रा झुक आईं। कहा, "अच्छा, उस मुए नवाब के बच्चे को किस घाट का पानी पिला दिया ?"

"हां-हां, चाहे जो कह लो—मरी-पीटा, मुआ, मूंडीकाटा, हरामजादा ···जो जी में आए कहो। आज तो वह कानपुर चले ही गए हैं।"

भौजी बुरी तरह झेंप गईं और फिर झेंप मिटाने के लिए ही हंसकर कादिर मियां को मारने का इशारा करते हुए कहा, "दुन, तुम बड़े खराब आदमी हो, कादिर ! मैं तो तुम्हारे उस मुए आका को कह रही थी ?"

"हमारे, नवाब साहब बिचारे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। सीधा-सादा आदमी बिचारा, और फिर आजकल मजनू हो रहा है !"

"अरे वही तो पूछती हूं, कहां आंखें लड़ीं। किसकी किस्मत में हज़ार-पांच सौ की गठरी बदी है ?" भौजी ने बड़े कौतूहल के साथ पूछा।

निहायत संजीदगी के साथ मियां कादिर ने कहा "एक दिन वह ठाकुरगंज जा रहा था।"

"हां-हां, आज कोई दस-पन्दरा दिन हुए।"

"बस, तभी तुम्हारी तीरे-नज़र ने उसे···"

"ऐ चलो, बस रहने दो। एक ज़री-सी बात बताने में तुम्हें···"

"अरे नहीं भौजी, सच कहता हूं, वह तुम्हें रटा करता है।"

भौजी को कोई बात नहीं सूझी, लिहाजा एक सर्द आह खींचकर कहा, "हां भाई, हम भी अगर बी अब्बासी की तरह हसीन होते तो काहे कोई हमको यों बनाता।"

"ये लीजिए, कहती हैं हम बना रहे हैं। भला मैं तुम्हें क्या बना सकता हूं ! ···अमां गफूरन, अरे सो गई क्या ?"

गफूरन ने करवट बदलकर कहा, "भला जब तक तुम्हें नींद न आ जाए, क्योंकर कोई सो सकता है ?"

"अच्छा, अब यों ताने कसोगी ? भला हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा

६२२८
विनोद ...

है, बी गफूरन जान ?"

"बिगाड़ोगे और क्या ? नींद हराम कर रक्खी है तुमने तो ! अब कुछ से तुम्हें कम्पनी बाग में बांध दिया करूंगी। पड़े-पड़े दो बजे तक रेंका करना।" बी गफूरन ने मुस्कराकर कहा।

मियां कादिर ने कहा, "अरे भई, कम्पनी बाग में क्यों बांधोगी, हमको तो तुमने और भौजी ने मिलकर पहले ही से अपनी काकुले-पेचां में गिरफतार कर रक्खा है।"

भौजी और गफूरन दोनों साथ ही साथ कुछ कहना चाहती थीं कि एकाएक मियां हुसैनी अपना तांगा हांकते हुए आ पहुंचे।

"अबे, क्या बक-बक लगा रक्खी है ?" मियां हुसैनी ने आते ही कादिर से कहा।

"अमां, तुमने कुछ सुना भाईजान ? ये भौजी और तुम्हारी बीबी हम-पर मर रही हैं।"

घोड़े की रास खींचते हुए मियां हुसैनी ने हंसकर कहा, 'अच्छा बेटा, अभी आकर तेरी इस्कबाजी का मजा चखाता हूं !" कहकर वह अहाते के अन्दर अपना तांगा खोलने चला गया। मियां कादिर ने टीप लगाई :

"आया चौथा महीना क्वार,
कहती वह नार,
मुझे इन्कार—
पलंग पर चढ़ना !
मेरा बालाजोबन और हरी-हरी चूड़ियां।"

तांगा खोलकर हुसैनी गुनगुनाता हुआ आया और कादिर की चारपाई पर बैठकर उसकी छाती थपथपाता हुआ बोला, "तुम्हें कुछ मालूम भी है मियां, कल भौजी हमसे कह रही थीं कि हमें नागें पर घुमाने ले चलो। तो फिर हमने कहा कि जो नवाब भाई हमारे ऊपर खफा हुए तब ?"

भौजी ने बीच में टोककर हुसैनी से कहा, "अच्छा-अच्छा, जो जी में आए कह लो। कल तुम दोनों को कांजी हौस में बन्द करा दूंगी।"

मियां कादिर ने चुटकी लेते हुए कहा, "अरे भई, तुम्हारा ज़माना है भौजी, जी चाहे तो फांसी पर लटकवा देना। अमां हुसैनी, तुम्हें कुछ मालूम भी है, हमारे नवाब आजकल इनपर फिदा हैं।"

हंसते हुए, ज़रा कुछ उत्तेजित होकर, मियां कादिर की छाती थप-थपाते हुए हुसैनी ने कहा, "अरे यार, तुम्हें आज का किस्सा तो बताया ही नहीं। तुम्हारे नवाब साहब आज हमारे ही तांगे पर बैठकर उसी ठेठर के मनीजर के यहाँ गए थे। फिर उसीके साथ आप केसरबाग गए, वहीं जहां सब ठेठरवाली इक्ट्रेसें ठहरी हैं न ?"

मियां कादिर एकदम चमककर उठ बैठे, और हुसैनी की पीठ पर ज़ोर से हाथ मारकर कहा, "अच्छा, अब की तो बुद्धू मियां बड़ी भारी मंज़िल मार आए ! मनीजर से क्या-क्या बातें हुईं ?"

"रस्ते में कहने लगे, 'वल्ला मनीजर साहब, क्या कमाल का खेल आपकी कम्पनी दिखलाती है कि बस, क्या कहने हैं ! और उस दिन तो बस कमाल ही कर दिया था उस इक्ट्रेस ने, जो लैला बनी थी। भई वाह, क्या हुस्न पाया है···!' सुना भाई, इस तरह जो नवाब साहब तारीफें करने लगे तो बस मनीजर ने अपना मतलब साधा। अमां, हम तुमसे सच कहते हैं कादिर, हमारी आंखों के सामने ही नवाब साहब के बच्चे ने सौ रुपये के नोट मनीजर को दिए। वल्ला, अपनी जान कसम···!"

बात काटकर कादिर ने पूछा, "अच्छा फिर ?"

"फिर क्या ? मनीजर ने कहा कि घबराइए नहीं, अभी हुस्नआरा को आपकी बगल में बिठाए देता हूं। आज ठेठर की छुट्टी है। जी चाहे तो रात-भर मोटर में घुमाइए। कम्पनी की गाड़ी भी हाज़िर है। हां, ज़री पिटरौल का खर्चा है। अमां क्या बताएं, ये साला मनीजर अपना ही फायदा सोचता है। नहीं तो, अल्ला कसम, आज रात-भर में आठ दस रुपये कमा लेता।"

"और हुस्नआरा को बगल में दबाए-दबाए घूमते, क्यों ?" मियां कादिर ने कहा।

"अमा, हटो भी। बेफजूल की बकवास लगा रक्खी है। खामखा रात की नींद हराम कराने में क्या मजा मिलेगा, उस्ताद।"

"अच्छा तो आप ये समझते हैं कि बी गफूरन को आपकी कुछ परवाह है? अमा उनके हिसाब से चाहे तुम हुस्नआरा के साथ रात काटो या चावलवाली गली में। वह तो हमपर मरती हैं। क्यों बी गफूरन जान ?"

मिया के लिए रकाबी में रोटियां निकालकर रखते हुए गफूरन ने उलटे हाथ के सहारे पर अपनी ठोडी टेकते हुए कहा, "ए है, जरी देखो तो सही कादिर मिया के चेहरे पर खबसूरती टपकर ही है। ऐ, हम क्या, सारी दुनिया मरती है तुमपर। आदमी क्या हो, परीजादे हो परीजादे!"

बड़े इतमीनान के साथ मुस्कराते हुए मिया कादिर ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरना शुरू किया, और फिर हुसैनी से बोले, "सुन लिया न भाई जान? अब तो यकीन आया? अमा, अभी तुमने देखा क्या है? कल देखना, इधर तो तुम तांगा लेकर गए, और उधर इन्होंने हमसे निकाह पढ़ाया।"

रोटी खाते-खाते मिया हुसैनी ने कहा, "चलो, यह भी ठीक है। भौजी हमसे कह भी रही थीं। हम इन्हें अपने घर बिठा लेंगे।"

मिया कादिर ने कहा, "अमा, ये कैसे हो सकता है? भौजी से और हममें तो पहले ही इकरारनामा हो चुका है।"

मिया हुसैनी ने आवाज लगाई, "भौजी होत्!" और भौजी की नाक ने उत्तर दिया, "खर्र-खर्र।"

"कादिर मिया की उम्र उस वक्त शायद बारह या तेरह बरस की रही होगी जब उनके नवाब भाई का दाहिना हाथ शहीद हो गया था। किस्सा यों है कि नवाब मिया के पुर-नूर चेहरे पर मुफ्तीगंजवाली खटकिन परवाने की तरह मर मिटी। खटिक मिया टापते ही रह गए और चमकी बीबी छम-छम करती हुई, उनके देखते, इनके साथ घण्टाघर वाला तालाब

"अमा, हटो भी। बेफजूल की बकवास मचा रक्खी है। ख़ामख़ा रात की नींद हराम कराने में क्या मज़ा मिलेगा, उस्ताद!"

"अच्छा तो आप ये समझते हैं कि बी गफ़ूरन को आपकी कुछ परवाह है? अमां उनके हिसाब में चहे तुम हुस्नआरा के साथ रात काटो या चावलवाली गली में। वह तो हमपर मरती हैं। क्यों बी गफ़ूरन जान?"

मियां के लिए रकाबी में रोटियां निकालकर रखते हुए गफ़ूरन ने उलटे हाथ के सहारे पर अपनी ठोडी टेकते हुए कहा, "ए है, ज़रा देखो तो सही कादिर मियां के चेहरे पर खूबसूरती टपकर ही है। ऐ, हम क्या, सारी दुनिया मरती है तुमपर। आदमी क्या हो, परीज़ादे हो परीज़ादे!"

बड़े इतमीनान के साथ मुस्कराते हुए मिया कादिर ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरना शुरू किया, और फिर हुसैनी से बोले, "सुन लिया न भाई जान? अब तो यकीन आया? अमां, अभी तुमने देखा क्या है? कल देखना, इधर तो तुम तांगा लेकर गए, और उधर इन्होंने हमसे निकाह पढ़ाया।"

रोटी खाते-खाते मिया हुसैनी ने कहा, "चलो, यह भी ठीक है। भौजी हमसे कह भी रही थीं। हम इन्हें अपने घर बिठा लेंगे।"

मिया कादिर ने कहा, "अमा, ये कैसे हो सकता है? भौजी से और हमसे तो पहले ही इकरारनामा हो चुका है।"

मिया हुसैनी ने आवाज़ लगाई, "भौजी हो!" और भौजी की नाक ने उत्तर दिया, "खर्र-खर्र।"

"कादिर मिया की उम्र उस वक्त शायद बारह या तेरह बरस की रही होगी जब उनके नवाब भाई का दाहिना हाथ शहीद हो गया था। किस्सा यों है कि नवाब मिया के पुर-नूर चेहरे पर मुग़लीगंजवाली स्फटिक मरवाने की तरह मर मिटी। स्फटिक मिया टापते ही रह गए और चमक्को बीबी छम-छम करती हुई, उनके देखते, इनके साथ घण्टाघर वाला तालाब

देखने चल दी। दूसरे दिन जब नवाब मियां नवाबगंजी पटाखे लिए चौक से लौट रहे थे—शबे-रात का जमाना था—कादिर मियां ने सिगरेट से गीले रूमाल में झप से दियासलाई दिखा इनके हाथ पर उछाल दिया।

"बस जनाब, आप यह मुलाहज़ा फरमाएं कि तोप-सा धड़ाका हुआ और पंजा का पंजा सरे से गायब! बाकी रही सिर्फ खून और नसों का फौवारा छोड़ती हुई उनकी कलाई और उसमें से लटकता हुआ अधजली नसों का लोथड़ा। तब से भौजी ही अपनी मुंह जली नौन और नवाब मियां की दारू की बोतल और चाट का इन्तजाम तरकारी बेच-बेचकर करती हैं। हम तो कहते हैं बड़ी गमखोर हैं हमारी भौजी, नहीं तो इन्हें क्या कमी थी? बड़े-बड़े नवाब लोग इनपर कुर्बान होते रहे। हजारों बार हम ही से लोगों ने कहा, 'कादर हुसैन, सौ रुपये तुम भी ले लेना। नवाबिन को हमारे हरम में पहुंचा दो।' मगर नवाबिन बन्दी ऐसी कि सदमे उठा लेना मंजूर, तकलीफें सह लेना गवारा, मगर अपनी जगह छोड़ के न गई। लाखों रुपये के ज़ेवर इनके सामने रख दिए थे हमारे नवाब ने, मगर बन्दी ने मुंह फेरकर देखा भी नहीं।...और ये साला कमीना ऐसी परीज़ादी-सी सआदत मन्द औरत को मार रहा है।" बिजली के खम्भे का सहारा लेकर खड़े हुए कादिर मियां एक राह चलते को नवाबिन के चीखने-चिल्लाने का सबब बता रहे थे।

"अमां, तो बात क्या हुई?" उसने पूछा।

"बात कुछ भी नहीं, मजे में पड़े हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे मियां। उधर से एक कचालूवाला निकला तो उससे एक पैसे की चाट लेकर खाई। जब कचालूवाले ने पैसे मांगे तो भौजी ने उठकर इनके कुरते की जेब से निकालकर दे दिए। बस जनाब, अब आप ये खयाल फरमाएं कि नवाब भाई जोश में आकर उठे और दे दनादन, दे दनादन भौजी को मारना शुरू कर दिया। अब आप ही बताइए मियां, कि इसमें भौजी की क्या खता थी? कौन इनकी कमाई में से उसने पैसा दे दिया, और फिर अपने ऊपर तो सरफा किया नहीं। ज़रा सोचने की बात है भाईजान, कि चहे इसकी

बिक्री हो चहे न हो, एक रुपया रोज़ यह नवाब का बच्चा साला इसका सिर चीरकर ले जाता है। अभी कोई बचाने जाए तो मज़ा देखिए। हम ही गए तो उलटे हमारे ऊपर ही झपट पड़े। लेकिन क्या, यह कहो कि भौजी की वजह से ही गम खाकर चले आए, नहीं पीस दिया होता साले को चटनी की तरह से।"

कादिर मिया इधर बातें कर ही रहे थे, उधर जो देखा तो नवाब भाई दाढ़ी पर उंगलियों से कघी करते हुए कन्धे पर कुरता रक्खे चले आ रहे हैं।

हिकारत की निगाह से अपने नवाब भाई की तरफ देखते हुए मिया कादिर ने धीरे से कहा, "बेईमान, काफिर साला !" और फिर हाथ झाड़ते हुए, भौजी की कोठरी की तरफ चले।

भौजी ज़मीन पर पड़ी सिसक रही थी। दुपट्टा दूर पड़ा हुआ, सिर के बाल खुल गए थे, छाती ज़ोरों से धड़क रही थी।

निहायत सजीदगी के साथ, उतरे हुए कंठस्वर से कादिर मियां ने कोठरी के दरवाज़े पर खड़े होकर आवाज़ दी, 'भौजी !"

भौजी और ज़ोर से सिसकने लगीं।

धीरे-धीरे उनके पास बैठकर उनका हाथ थपथपाते हुए धीरे से पूछा, "क्या बहुत मारा साले ने ? बड़ा कमीना है साला।"

भौजी कुछ बोली नहीं। हां, सिसकियों ने और ज़ोर पकड़ लिया।

हाथ पकड़कर ज़ोर से उठाते हुए मियां कादिर ने कहा, "अच्छा, अब उठो तो। क्या बताएं भौजी, तुमने तो हमारे हाथ बांध रक्खे हैं। हम कहते हैं, जो तुम ज़री-सा इसारा भी दे दो तो साले की हड्डी-पसली एक कर दूं। बड़ा सोरे-पुस्त बना है बेईमान, औरतों पर हाथ उठाता है।"

भौजी कुछ बोली नहीं। हथेली के सहारे अपनी ठोढ़ी टिकाए चुप-चाप आंसू बहाती रहीं।

बी गफूरन भी आकर कमर पर हाथ रक्खे खड़ी हो गईं, बोलीं, "ऐसा भी क्या मुआ मुर्दुआ निठल्ला, जब देखो तब हाथ छोड़ बैठे।

यह पागलपना कर बैठती हो। हजार बार समझा दिया, यह हाथ साला जब से सड़ गया है, तुम तो जानती हो कैसी तकलीफ हमें होती है। अब लाचार हूं। नहीं तुम्हें भला इतनी मशक्कत करनी पड़ती? अच्छा होगा। हां, उठिए तो मेरी बेगम साहिबा। मेरी महारानी जी।"

महारानी जी जोर-जोर से सिसकने लगीं। कोई दस मिनट तक नवाब मियां अपनी बेगम साहिबा की खुशामद करते रहे, लेकिन जब वह न उठीं, न पैसे ही दिए और न कुछ जवाब ही दिया तब तैश में आकर खड़े हो गए। कहा, "घंटा-भर से रानी जी, महारानी जी कर रहा हूं। बड़ी आई वहां से महारानी जी बनकर। अच्छा, अब उठती है कि लगाऊं तीन लातें —हवास ठिकाने आ जाएं।" कहकर उन्होंने उसका हाथ पकड़कर उठाना चाहा, लेकिन नवाबिन छिपकली की तरह जमीन पर जैसे पंजे गड़ाकर चिपक गई—न उठी। "कहता हूं, उठकर सीधी तरह पैसे दे दे, नहीं तो···अभी क्या मारा है, वह डंडे बरसाऊंगा कि बस!"

नवाबिन पर इसका भी कुछ असर न हुआ। नवाब ने उसका एक हाथ पकड़कर पसली में ठोकर लगाते हुए कहा, "उठती है कि नहीं, हरामजादी!"

नवाबिन जान छोड़कर चीख उठी, "अरे, मेरे अल्ला, मार डाला रे!"

ठोकर की चोट ने नवाबिन को बुरी तरह तिलमिला दिया था।

गफूरन झट से उसकी कोठरी में घुस आई और चीखकर बोली, "ये क्या कर रहा है कसाई! अरे अब तो उसकी जान छोड़ दे काफर।"

उसकी बात का जवाब न देकर नवाब ने नवाबिन से फिर कहा, "अच्छा देती है कि नहीं। या लगाऊं···"

गफूरन तड़प उठी, "ले, पैसा लेगा न? कसाई कहीं का! छोड़ उसकी जान, ले यह।" कहकर गफूरन ने अपनी कमर से बटुआ निकालकर उसके सामने रुपया फेंक दिया।

नवाब ने चुपचाप रुपया उठाया, एक बार नवाबिन की तरफ देखा, फिर चला गया।

गफ़ूरन उसके पास बैठकर पंखा झलने लगी। इस बार नवाबिन सच-मुच बेहोश हो गई थीं।

रात के कोई आठ-नौ बजे कादिर मियां घूमकर गाते हुए लौटे, "मुझे सैंया तेरी अदाओं ने मारा।"

भौजी ने अपनी कोठरी से आवाज़ लगाई, "अमां कादर!"

"हां, क्या है भौजी?" कादिर मियां घर की चौखट से लौट आए।

चमेली का हार गले में पड़ा था, जूही का गजरा हाथ में लपेटे हुए, नया पम्प जूता पैरों में और सिर पर बढ़िया दुपलिया टोपी। मियां कादिर पान चबाते हुए आए। भौजी बैठी पान लगा रही थीं। बोलीं, "ऐ-है, आज तो तुम बड़े खबसूरत जंच रहे हो, कादर! आज हमारे यहां ही रह जाओ।"

सिगरेट के टुन्ने का एक कश ज़ोर से खींचकर मियां कादिर ने सिग-रेट को जूते से मसले और धुआं छोड़कर मुस्कराते हुए कहा, "अभी आया। ज़रा सिकन्दर को मौसी से आऊं बाज़ार से।"

कमर पर हाथ रखकर नाक सिकोड़, फिर फीकी हंसी हंसते हुए भौजी ने कहा, "सिकन्दर-फिकन्दर नहीं, ज़रा-सा हल्दी-चूना पकवा लाना बहू से। अल्ला क़सम, बड़ी मार मारी है मरी-पीटे ने आज।"

एक दर्द-भरी हल्की-सी अंगड़ाई लेकर भौजी फिर मुस्करा दीं।

(१९३८ ई०)